समर्पण

सँभालो वीणा वीणापाणि !
करो झंकृत ये बिखरे तार
प्रलय गाऊँगा मैं कल्याणि !
आज भर प्राणों में हुंकार

— बजाती ये नूपुर-नक्षत्र
सृष्टि नाचेगी नृत्य कराल
बजेंगे सूर्य-सोम मंजीर
लहर कर देंगे सागर ताल

गान में वर्त्तमान के आज
मिलेंगे गीत भविष्य-अतीत
शिराओं में भरता नव प्राण
छिड़ेगा अजर-अमर संगीत —

छोड़कर महामरण का पाश
विनत हो चरणों में संसार
अमरता करे पुण्य अभिषेक
बहा नभ से अमृत की धार

सुधीन्द्र

सङ्गीत-समारम्भ के पूर्व —

'प्रलयवीणा' मे प्रलय का आह्वान है। 'क्रान्ति' और 'प्रलय' के स्वरूपो की मेरी कल्पना 'वीणा' की अनेक झंकृतियो मे मुखरित हुई है। उसे अप्रत्याशित विध्वंस, प्रचण्ड ताण्डव, सर्वनाश के रूप मे नहीं, वरन् सत्-चित्-शिव के सन्देशवाही अग्रदूत के रूप मे ही मैंने ग्रहण किया है। मेरे पाठक, आशा है, इसका अभिनन्दन करेंगे।

एक विराट् परिवर्तन और कायाकल्प की कल्पना ही इन गीतो मे मूर्त हुई है और यह तो प्रत्यक्ष है कि हम संक्रान्ति काल मे हैं और प्रलय हमारी शिराओ में स्पन्दित, कंठो मे ध्वनित और क्रिया-कलाप मे मूर्त है।

'वीणा' में मैंने अपने जीवन और प्राणो का अमृत ढालने का आयोजन किया है, वह यदि जीवन और प्राणों की सञ्जीवनी दे सकी, तो मेरा प्रयास सफल है।

इन गीतों में विद्रोह की ज्वाला, ओजस् की चिनगारियाँ, प्रलय की प्रेरणा, क्रान्ति की आराधना, विस्फोट का गर्जन, राष्ट्रीयता का वैभव, मानवता का दर्शन और प्रेम का अमृत आप ही आप सञ्चित हो गये हैं। हाँ, इसमें वासना की वारुणी और उसका वाग्विलास नहीं है।

आज हमें अपेक्षा है आशा, उत्साह, ओज, चेतना और उल्लास से अनुप्राणित गीतों की, न कि मानसिक जड़ता, निराशा, रुदन और मूर्छामयी रागिनियो की। 'प्रलयवीणा' इस दिशा में कितनी दूर जा सकी है, इसका निर्णय विज्ञ पाठको पर छोड़ता हूँ।

इन नवीन गीतो के स्वरो मे समन्वय लाने के लिए अपने 'शंखनाद' के दो स्वर — 'राग' और 'कवि', तथा अपनी 'आरती' के ३-४ दीपक अन्त मे सँजो दिये हैं।

सुधीन्द्र

अनुक्रमणिका

आमुख

'साहित्यकार की स्याही शहीद के लोहू से भी पवित्र होती है।' साहित्यकार को जीते जी अपनी हड्डियो और रक्त का दान देना पडता है; अपने अस्तित्व को गला-घुलाकर स्वयम् साहित्य बनना पड़ता है। साहित्य वस्तुत. किसी समाज, जाति या राष्ट्र-विशेष का लिखित जीवन-प्रतिबिंब होता है, जिसमे उसके आचार-विचार, आदर्श, उत्थान-पतन, नीति-रीति, प्रीति-प्रतीति अर्थात् समस्त सस्कृति अंकित रहती है।

कवि जो कुछ लिखता या बोलता है उसमे उसकी आत्मा ढल आती है। वह उसकी सुरुचि और कुरुचि सभी का प्रतिबिंब होता है। जिस कवि के हृदय में सच्चा प्रेम नही होगा, उसकी लेखनी से सच्चे प्रेम की पक्तियाँ निकल ही नही सकती। यदि निकली भी, तो उनका प्रभाव चिर-स्थायी और मर्मस्पर्शी न होगा। इस प्रकार व्यक्तित्व ही वस्तुत: साहित्य बनकर हमारे सामने आता है। जिसकी आत्मा जितनी महान् है, उसकी वाणी का उतना ही प्रभाव है। साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है, इससे हटकर वह साहित्य ही नही रहता। 'कला-कला के लिए' का सिद्धान्त मिथ्या है।

सुप्रसिद्ध साहित्य-मनीषी, परमतत्त्वदर्शी महात्मा टाल्स्टाय ने काव्य-कला की यही कसौटी, या मापदड रखा है, जिसे रवीन्द्रनाथ ने अपने 'प्राचीन साहित्य' में उद्धृत किया है। साहित्य या काव्यकला का एकमात्र उद्देश है हमारी उदात्त वृत्तियो को जाग्रत करना। जो काव्य दुर्जन को सज्जन, क्रूर को दयालु, दानव को मानव और मानव को देवता के रूप में प्रतिष्ठित न कर सके, टॉल्स्टॉय के मत में, वह काव्य अपने मन्तव्य से विमुख है। जो कविता हमारी आत्मा को ऊपर न उठाये, उसे हम निम्न

कोटि की कविता कहेगे।

इस प्रकार, कविता का क्या असर पडता है—मन पर, विचारों पर, हमारी आँखो पर, प्राणो पर, आकाक्षाओ पर, हमारे चरित्र-गठन में, और अत में समाज के उत्थान-पतन मे, राष्ट्र-निर्माण में, जीवन-निर्माण मे इसीसे कविता की अच्छाई-बुराई समझनी चाहिए।

कवि सामाजिक व्यक्ति है। उसका उत्तरदायित्व है समाज के प्रति। जबतक समाज का वह सजीव क्रियाशील व्यक्ति है, अग है, तभी तक उसकी सार्थकता है। जब वह समाज के लिए पगु हो जाता है, तब उसकी आवश्यकता नही। प्लेटो ने अपने समाजवाद मे ऐसे किसी कवि को स्थान नही दिया, जो उसका क्रियाशील व्यक्ति न हो। तो, जब कवि समाज का, अपनी जाति का उत्तरदायी व्यक्ति बनकर, कुछ कहता-सुनता है, तब उसकी जाति या समाज उसे सुनता है। कवि जाति का, समाज का, राष्ट्र का, लोक का व्यवस्थापक (Legislator) है। गोस्वामी तुलसीदास ने बिखरे हुए समाज का सगठन जैसा रामचरित में किया है, वह कवियो के लिए आदर्श है।

"कवि अपने समाज के प्रति उत्तरदायी है। जब वह उसके कल्याण-कारी पक्ष में अपने प्राणो के गान मिलाता है, तभी वह वदनीय होता है, पर जब इसके विपरीत, समाज मे प्रमाद से, लोभ से, अस्वास्थ्यकर कीटाणुओ को उत्तेजन देनेवाला अहितकर स्वर छेडता है, तब निंदनीय।" यह व्यक्ति-विशेष की व्याख्या नही। यह वह सत्य है, जिसे कवि के जाग्रत विवेक ने स्वीकृत किया, जिसके आगे उसका ज्ञान, निर्णय नतमस्तक हुआ।

हिन्दी की क्रान्तिकारिणी, छायावाद के नाम से अभिहित की जाने वाली, 'कला के लिए कला' की प्रतिष्ठा करनेवाली, कविताओ का अब युगान्त आ गया। स्वप्नलोक को छोडकर कवि वस्तु-जगत् में ही अब सत्य

को साकार देखने लगा, और उसके विवेक ने उसे पल्लव की स्वप्निल छाया से खीचकर ग्राम्या के पास ला खडा कर दिया। यह आधुनिक हिन्दी-कविता के प्रथम उत्थान के इतिहास की रूपरेखा है, जिसमे कविता स्वप्नलोक से उतरकर पृथ्वी पर अपना आलोक लेकर आयी है।

'चलो मृत्तिका की धरणी पर, स्वप्नमयी ओ स्वर्विहारिणी !' का गायक सुधीन्द्र इसी द्वितीय चरण का कवि है।

वह परोक्ष के प्रति अपना अनुमान निवेदित न कर, प्रत्यक्ष के साक्षात्कार से, सत्य के प्रति वस्तुस्थिति मे अपने चरण बढा रहा है। वह जीवन से साहित्य की सृष्टि मानता है और साहित्य को जीवन का विकासक। जीवन की अनेकरूप राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक विषमताओ को, परपरागत रूढियो को, बधनो को, छिन्न करने की प्रेरणा उसकी 'प्रलयवीणा' मे है।

साहित्य में व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा किसी भी व्यक्ति के विचारों से प्रतिष्ठित होती है, साहित्यकार की कृति ही उसका नाम ग्रहण कर लेती है, और हम उसकी कृति का नामोल्लेख न कर, उसे उसके सृष्टा के नाम से ही सबोधित करते है। 'प्रलयवीणा' और सुधीन्द्र इसप्रकार एक-दूसरे के पर्यायवाची है।

सुधीन्द्र—एक युवक—एम. ए., 'साहित्य-रत्न'—छात्र-जीवन मे प्रथम श्रेणी के विद्यार्थी—फिर, देशी राज्य की दमन-नीति के विद्रोही बनकर भाई हरिभाऊजी के आश्रम में लोकसेवी कार्यकर्ता—अब 'जीवन-साहित्य' के सहकारी सपादक।

'हिन्दी के कवि किधर ?' अपने प्रथम लेख से ही हिन्दी-जगत मे एक हलचल मचा देनेवाले, रवीन्द्र की 'गीताजलि' को हिन्दी में लानेवाले, 'शखनाद' के राष्ट्रीय कवि, ओजस्वी लेखक, तेजस्वी कवि, एवं मनस्वी

साधक का यही सक्षिप्त परिचय है।

काव्य के दृष्टिकोण का सुधीन्द्र अपने उस प्रथम क्रान्तदर्शी लेख मे है, और उसका निदर्शन 'प्रलयवीणा' में। अभी कल ही मेरठ साहित्य-परिषद् का वक्ता सुधीन्द्र अधिक सुगठित पाजल शब्दो में जैसे अपनी कविता ही को लक्ष्य करके उसीकी भूमिका मे कह रहा था

'युग-युग की कविता का आधार युग की कविता ही है। युग की कविता युग-युग की कविता की विरोधिनी नहीं, प्रत्युत भित्तिरूप है। मनुष्य जहाँ ससार के युग-निर्माणकारी विराट आयोजन में अपने जीवन का अमृत बहाता है, वहाँ वह घर की छोटी-छोटी उलझनो को भी सुलझाता है। * * कवि पहले युग के प्रति उत्तरदाता है, फिर युग-युग के प्रति। जो कवि अपने परिजनों के प्रति अनुराग नहीं रख सकता, उसका विश्वबन्धुत्व या मानवता का निर्वाह करना निरा दम्भ है।

'प्रलयवीणा' के प्राथमिक अनेक गीतो में अनेक बार, विभिन्न छदो तालो, लयो में हमें इसी युगवाणी का स्पन्दन मिलता है। 'मगलाचरण' ही मे कवि अपनी कविता को इसी भावना से विबोधित करता है .

आज जगा दे ओ प्रलयंकरि ! मेरी अमर प्रलय की वीणा
फूले-फले अमरवल्ली - सी ससृति जीवन - सुधा - विहीना

उसका हृदय मानवता और ससृति की वेदना से व्यथित है, और लोक मे मगल प्रभात को आमन्त्रित करने के लिए ही वह अपनी प्रलय-वीणा को जगाता है :

जाग जाग कल्याणि ! लगा दे आग आज इस रक्तोत्सव में
उठ, उठ वीणापाणि ! जगा दे अमर राग भव के जनरव में
उठ, उठ ओ कविते ! मदालसे ! जग-प्रासाद ध्वस्त होता है !
ओ कल्पनारते ! रतिनिरते ! मानव आज त्रस्त होता है !

सिसक रही चुपचाप धरित्री, बनी सभ्यता मूक-अरसना
आज पडी संस्कृति महीयसी दलित, मुक्तकेशा, दिग्वसना
आज मरण के थिरक-थिरक से मानवता है नत-हत-दीना
करुणा पडी कराह रही है कुण्ठित-लुण्ठित खिन्न-मलीना
काल-पुरुष की बजे भैरवी, प्राण-प्राण अनुरणन कर उठे
आज विश्व की यह भंगुरता अमरण का निक्वणन भर उठे
आज मधुर मुरली पर मुग्धा राधा बने प्रलय-रचयित्री
गिरिधर की दीवानी मीरा बने क्रान्ति की अब कवयित्री
आज रोम-तारो पर गा दे प्रलय-गीत करुणा कल्याणी
मानवता का भरे अमर स्वर उसमें वीणापाणी वाणी

यही मगलाचरण 'प्रलयवीणा' का मूल सन्देश है जो कवि के प्रत्येक गीत मे मुखरित हो उठा है।

सुधीन्द्र का कवि सुधीन्द्र नही, उसका युग ही है। इसीलिए उसमें 'प्रलय' की ऐसी उत्कट पुकार है और उसकी वीणा मे है जागरुक विद्रोही की कसमसाहट, छटपटाहट, नवसर्जन की व्यग्रता और बेचैनी :

हुंकार भरें हम, अखिल धरित्री डोले
भ्रू तने, नियति ये बन्ध युगों के खोले
हम उठें, गान हो खलबल, सागर टलमल
हम चलें, वज्र में विजय हमारी बोले
गाओ सुनकर प्राण-प्राण में नवसर्जन का राग समाये
बस 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत'-स्वर छा जाये

इस प्रकार उसकी इस युग-वीणा में जड़ता में आवद्ध आकुल मानव-आत्मा ही बोल रही है। कही कराहती है, कही गरजती है, कही हुंकारती है, और जैसे युग-युग की पीड़ा के भार को वहन करते-करते

भीतर ही भीतर ज्वालामुखी की तरह धधक उठी है :

युगों को तोड़ती धारा हमारे प्राण की बिजली अचानक आज है कड़की
युगों की भस्म की स्तर को उड़ाती श्वास से नवचेतना की वन्हि है भड़की
धमनियों में धड़कता, गरजता, हुंकारता नव स्फूर्ति का अब ज्वार आया है
सिमिटतीसी सिकुड़ छिपती-बिखरती जारही दृगज्योतिको लख पाशछाया है
हृदय के इस हिमालय में प्रबल विप्लव लिये ज्वालामुखी भीषण गरज डोला
हमारे श्वास में भीषण बवंडर इन हमारी अस्थियों में वज्र बज बोला

सस्ती भावुकता से ऊपर उठकर मुधीन्द्र ने स्वस्थ संतुलित धरातल पर काव्य के इस कला-भवन का निर्माण किया है।

'प्रलयवीणा' की रागिनी जब छिड़ने लगती है तो प्रलय का एक ओजस्वी वातावरण ही निर्मित-सा हो जाता है, 'प्रलय' का संगीत वीणा की प्राथमिक अनेक झंकृतियों में बजता हुआ हमारे तारों को भी झनझना देता है :

नटी का चित्तरंजन नृत्य शिंजन नूपुरों का स्वन-रणन-अनुरणन मनमोहन
मिले जाकर प्रलय के इस महासंगीत में व्यामोहहारी एक निस्वन बन
सजग हों मुग्ध मन ये, मदविचुम्बित ये विलोचन हों अनुप्राणित अचेतन तन
बनें ये मधु-निकेतन, केलि-वन-उपवन प्रलय के नृत्य के आँगन

'प्रलय-वीणा' काजी नजरुलइस्लाम की 'अग्निवीणा' की याद दिला रही है। उसमें स्वर प्रस्तार, मींड़, गमक, मूर्च्छनायें हैं, इसमें उसीकी सीधी-सधी गति-लय-तालमय तन-मन को तन्मय कर देनेवाली तानें हैं।

हिन्दी की आधुनिक राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित कविता पर यह बड़ा लाञ्छन है, कि उसमे राष्ट्रीय चेतना तो है किन्तु वह कविता का आत्मन् नहीं प्राप्त कर सकी, और इसलिए, ऐसी राष्ट्रीय रचनाओं के

प्रति काव्य-मर्मज्ञ उपेक्षा करें तो उचित ही है। हमारे राष्ट्रीय धारा के प्रतिनिधि कवि जब ध्वजा-गीत पर, उच्चस्वर से

झंडा नहीं झुकेगा, झंडा नहीं झुकेगा

कहते सुने जाते है, तब हमारी रही-सही सहानुभूति भी जाती रहती है।

राष्ट्रीय चेतना जहाँ कविता का सफल रूप ग्रहण कर सकी है, वहाँ हमें अँगुलियो पर ही गिने जाने लायक हिन्दी-भारती के कवि प्राप्त हुए। सर्वश्री भारतेन्दु, प्रतापनारायण से लेकर श्री मैथिलीशरण, माखनलालजी चतुर्वेदी, सनेही आदि के कठो के मध्य से जो कविता-धारा प्रवाहित होती हुई, देश के तप्त प्राणो को सीचती हुई, आश्वासन देती हुई, 'भैरवी' बनती हुई, चली आ रही है, वही आज अंततोगत्वा निराला, पत, दिनकर और सुधीन्द्र के अनेक स्वरो में आप्लावित हो रही है।

विविध पत्रो मे प्रकाशित हुई कवि की समस्त राष्ट्रीय कवितायें तो इस सग्रह मे नही आ पायी है, उनके लिए हमें किसी दूसरे सग्रह की माँग करनी होगी, परन्तु 'प्रलय-वीणा' की 'जलियाँवाला बाग' और 'भारत' ये दो कवितायें ही कवि सुधीन्द्र को राष्ट्रीय धारा का कवि घोषित करने के लिए पर्याप्त है, इतनी है इनमे शक्ति और जीवन!

अरे ओ जलियाँवाले बाग! छेड़ कुछ ऐसा विप्लव-राग
चल पडें सोये हुए शहीद चित्त में ले प्राणो का त्याग
फूल, तुम धधक उठो विकराल, पखड़ियों से निकले वह ज्वाल
भस्म हो जाये जिसमें आप, शृंखलाओं का दुर्भर जाल,
तुम्हारा लोहू-सिंचा पराग, वीरबाला का बने सुहाग

भड़क उठ जलियाँवाले बाग!
धधक उठ जलियाँवाले बाग!

सुनकर हम रोमांचित-से हुए रहते हैं, कि कवि की वाणी सागर के घन-निनाद सी करती हुई गूँजती है :

शहीदों की हड्डी के खण्ड
बनेंगे ठठ-ठठ वज्र प्रचण्ड
लहू के उनके छींटे लाल
बनेंगे अग्नि-स्फुलिंग कराल
भस्म हो जिसमें पाशव शक्ति खिलेंगे मानवता के फूल
यहाँ होगा वह स्वर्ण-विहान कि पल-पल जिसका मंगल मूल
हिमालय के शिखरों पर और प्रलय का छिड़े अनूठा राग

और 'भारत' कविता तो और भी ओजस्विनी है। देश-गौरव से अनुप्राणित करनेवाली ऐसी कविताएँ कम ही लिखी गयी हैं।

उठ-उठ ओ मेरे वन्दनीय ! अभिनन्दनीय भारत महान् !

ये पंक्तियाँ कर्ण-कुहरों में गूँजती हुई सीधे हमारे हृदय को छूने लगतीं और गर्व से भर देती हैं। उसका एक उद्बोधन देखिए :

जागो अशोक ! वह स्वर्ण-मुकुट पश्चिम दिगंत में हुआ अस्त
जागो विक्रम ! वह सिंहासन वह छत्र तुम्हारा हुआ ध्वस्त
जागो मोहन ! लो पाञ्चजन्य अब धर्म हो गया पापग्रस्त
जागो पुरुषोत्तम ! है मानव दानव से शंकित-भीत-त्रस्त
जागो गौतम ! धरणी पर फिर कर रहा मनुज है रक्तस्नान
जागो-जागो हे महावीर ! होता है नर-बलि का विधान

कवि अतीत युग-पुरुषों के वर्णनों में ही पाठक को बाँधे रखना नहीं चाहता। वह लोक-माताओं को जगाता है :

जागे जमुना में स्वाभिमान जागे गंगा में क्रान्ति-गान
कृष्णा-ताप्ती, नर्मदा-सिन्धु, माही-सतलुज दें अनल दान

सोयी आशायें उठें जाग, रोमों में तन के जगे आग
युग-युग से कीलित जिव्हा में जग उठे अचानक प्रलय-राग

कवि की राष्ट्रीयता मानवता की गोद मे प्रतिष्ठित होना चाहती है, और यही आज के गाधी-युग की सच्ची राष्ट्रीयता है :

तुम लो करवट, हिल उठे धरा, डोले अम्बर का रत्न-जाल
अँगडाई लेने लगे विश्व लहरें सागर के अन्तराल
हो आज हिमालय अनलालय हिम-बिन्दु बनें ये अग्निखण्ड
धर लो मानवता का विशाल इसके कंधो पर केतुदण्ड
क्षणभंगुर-नश्वर जीवन में अजरामर-अक्षर उठे जाग,
जीवन की कृति-कृति में जागे सत-शिव-सुन्दर ओ महाभाग !
मेरे अमृतमय ! जाग ! जाग ! !

'स्वर्गादपि गरीयसी' जननी-जन्मभूमि की वन्दना में लीन, महा-गान के गायक सर्वश्री रवीन्द्रनाथ, नजरुलइस्लाम, इकबाल, चकवस्त, नान्हालाल दलपतराम, मैथिलीशरण गुप्त के स्वर को ऊपर उठानेवाले वैतालिको मे ही हमारे इस कवि का अपना स्थान है ।

राष्ट्रीय चेतना से उद्भूत हिन्दी की अधिकाश कविता जहाँ कविता का स्थान नही प्राप्त कर सकी, वहाँ इस कवि की प्रतिभा देश के अन्तस्तल में भीतर उतरी हुई, सहज ही मे कविता के गौरवपूर्ण आसन पर अधिष्ठित हुई है ।

देश के उत्थान मे लगे हुए युगपुरुषो के प्रति स्वभावत: उसके हृदय में श्रद्धा है, और अनायास ही वह श्रद्धा उसके छन्दो में कविता बनकर फूट पड़ी है । उसकी अनुभूति अस्थित्वशेष (उसी के शब्दो मे) 'बापू' मे क्या देखती है, उसे आप भी देखिए :

सबसे प्रथम छुए तुमने ही
इतने कोटि अछूत !

हरिजन हुए आज तुमसे फिर
ये अन्त्यज अवधूत !
बखरी ग्रामशक्ति को बाँधा
कात-कातकर सूत !
आप नग्न रह-रह पहनाया, नग्नों को वर वेश
मांसल किया लोकको बनकर स्वयम् अस्थिरवशेष

अन्तिम शब्द इस सृष्टा का ही सृष्टि है, जो अपने अर्थ-गौरव से कान्त बन रहा है। आगे की पक्तियो का भी अर्थगौरव हृदयगम कीजिए.

मानवता के अमर पुजारी ! विभु की भव्य विभूति !
करुणाकर की करुणा-छाया ! करुणामय अनुभूति !
तुम्हारे उर से वहती विश्वप्रेम-धारा अनिरुद्ध
परमहंस ओ, चरम तपस्वी,
शांत ! अश्रांत ! प्रवुद्ध !
भागीरथ ! दधीचि ! योगीश्वर !
शुद्ध ! बुद्ध ! उद्‌वुद्ध !
सत्य:संध ! अजातशत्रु ! ओ
विश्वमित्र अविरुद्ध !
संसृति को वरदान तुम्हारी अच्युत पुण्य प्रसूति
देव, तुम्हारी चरणरेणु है भाल-भाल की भूति

साथ-साथ विगत फरवरी में प्रकाशित रवि बाबू की कविता पढ़िए :

चिरकालेर हातकड़ि जे
धूलाय खसे पड़ल निजे,
लागल भाले गांधीराजेर छाप

वस्तुत:, कला ऐसे ही युगपुरुष के चित्रण से सफल होती है।

जायसी की उत्कृष्ट कोटि की कविता भी अपने साधारण कथापात्रो के कारण जनता की रामायण न बन सकी, और राम के नाम ने ही तुलसी को अमर कर दिया ! युग-पुरुष गाधी पर कविता लिखना प्रतिभा को गौरवशील करना है । जो व्यक्ति राष्ट्र का अग्रणी है, विश्ववन्दनीय है, मानवजाति की भावना, आशा, श्रद्धा का केन्द्र है, वह काव्य का उपयुक्त आलम्बन ही है ।

फिर जिस युग मे प्रलय की वीणा मुखरित हो रही है वह बड़ी आर्थिक और सामाजिक विशृंखलता, विषमता तथा जटिलता का युग है, उसके प्रति विद्रोह उसकी कविता मे व्यक्त होना स्वाभाविक ही है । आज हमारी कविता के विषय, आलम्वन, आदर्श, मापदण्ड, भावधारा के कायाकल्प के साथ ही

शोणित में आया नवचेतन सांसों में छाया नव स्पन्दन
वीणा में फूटा स्वर नूतन कण्ठो में आज नया गायन
युग-युग के आज अचानक हो जर्जर हो बिखर पडे बन्धन

अतः नवीनता का निर्भ्रान्त दृष्टिकोण लिये हुए कवि की 'प्रलय-वीणा' अतीत की काव्यधारा के विरुद्ध एक प्रतिशोध है । 'कवि', 'चित्रकार' 'अनल-गान', 'राजाओ से', 'क्राति का आमत्रण' कविताओ मे कवि का भीषण विद्रोह सजीव होकर बोल उठा है ।

आज हिन्दी-कविता कल्पना के स्वप्नलोक मे केवल अनुरंजन और विलास की वाणी न बनकर गाँवो में, किसानो में घुलने-मिलने और समाज की दारुण लपटो में जलने आयी है । युग-युग से पदाक्रान्त और शोषित किन्तु 'महान मानव' किसान के शकर-रूप का चित्रण कवि ने बड़ी ही ओजस्वी भाषा मे किया है :

करते अपने श्रमसीकर से तुम संसृति-हित मधु का विधान,

निज रक्ताहुति देकर जग को तुम करा रहे पीयूष-पान
जग की बर्बरता को तुमने पहनाया संस्कृति-सुपरिधान,
तुम शस्य-सृष्टिधाता किसान ! तुम आदि-अन्नदाता किसान !

और 'क्रान्ति का आमन्त्रण' मे तो सामाजिक दुर्व्यवस्था—कृषक-जीवन की करुण दारुण कथा तथा श्रीमानो के आमोद - प्रमोद की कहानी—बड़ी हृदयस्पर्शी वाणी मे व्यक्त हुई है ।

'क्रान्ति का आमंत्रण' में जहाँ उसके प्राणो का उद्वेलन हुआ है, हम उसके हृदय की झाँकी देख सकते है। उसमे कवि का व्यक्तित्व अधिकतम अपनेपन मे बोल रहा है । वर्तमान समाज की अर्थ-व्यवस्था देखकर वह सिहर उठा है .

एक ओर समृद्धि थिरकती पास सिसकती है कंगाली
एक देह पर एक न चिथड़ा, एक स्वर्ण के गहनोवाली !
खौल-खौल उठता है लोहू ! देख-देख दीनो का क्रन्दन
भड़काता है आग हृदय में दीनो का शोषण-उत्पीड़न

जब उसकी प्रेयसी अपना 'मधुकलश' लेकर उसके पास आती है, तब वह उसे वही सावधान करता है। वह उससे 'नीरव निर्जन' में 'मधुर मिलन' का प्रस्ताव नही करता। । आज तो उसकी आग ही और है, यौवन के पराग पर मुग्ध वह नही हो जाता :

आओ तुम भी इस ज्वाला में ज्वालावरण पहनकर आओ
ये अंगारे निगल-निगलकर ज्वालामुखी आज बन जाओ
केशपाश अपने बिखरा दो बन जाओ तुम आज भवानी
क्रान्तिकीटधारिणी ! प्रणय के बन्धन तोड़ फेंक दो रानी

प्रणय के रगमच पर वह प्रलय की ओर इंगित करता है, और आग्रह करता है अपनी चिर-संगिनी से उसके गायन में ताल देने के लिए :

तीव्र स्वरो में जयगर्जन ले वज्रवेग लेकर पाणी में
परिवर्तन का महागीत ले अपनी प्रलयंकर वाणी में
वन्य वन्हि-सी बढ़ो प्रिये,तुम जग का कल्मष-जाल जलाती
प्रलय बाढ़-सी बढ़ो युगो के बाधा-बन्धन तोड ढहाती

वह स्वय विश्व के विष को कठहार बनाकर शिव के समान लोक को पाप की ज्वाला से बचाना चाहता है

फैला है जो कालकूट यह अमरण बन उसको पी डालें

और यह क्रान्ति, प्रलय सब है उस मगल प्रभात के लिए :

रोम-रोम में जगे साधना विष को अमृत कर देने की,
काल-रात्रि के अधकार में दिव्य ज्योति फिर भर देने की

उसके इस शिव सकल्प को कौन न दुहराना चाहेगा ?—

आज क्रान्ति का आमत्रण है,चलो क्रान्ति के हो दीवाने,
चलो क्रान्ति के महायज्ञ में मंगल आहुतियाँ बन जाने

कवि की अपनी भाषा, भाव-व्यजना, शैली, निजस्वता का यह एक चित्रण है। उसकी समस्त व्यथा—पीडा, उसका समत-विद्रोह रोष और उसका उद्देश पुजीभूत होकर, जैसे एक साथ ही इस कविता में खिल उठे है। उसके समस्त मुक्तक जैसे इस लघु प्रबन्ध मे, अनायास ही केन्द्रित और अनुबद्ध हो गये हैं। हम कहना चाहे, तो कह सकते है, यह रचना इस काव्य की प्रतिनिधि है, जहाँ हमे सुधीन्द्र के कवित्व और व्यक्तित्व का एक-साथ परिचय प्राप्त हो जाता है। एक ही कविता पढकर जो पाठक कवि के मगलप्रार्थी और कल्याणकामी अतस्तल के विद्रोह, ज्वार और विस्फोट तक पहुँचना चाहते है, वे इस कृति को पढे।

आधुनिक हिन्दी-कविता को तो वह बारबार प्रबोधित करते हुए नही थकता :

अब छोड़ प्रणय की तान अरी अब गीत प्रलय के गा कोकिल !
जग में आकुल स्वर बोल रहा
जग घुली ग्रंथियाँ खोल रहा
इस घने अँधेरे में जीवन उजियाली राह टटोल रहा
झनकाकर जड़ जीवन-वीणा नवजीवन-स्वर सरसा कोकिल !

'प्रलयवीणा' का वादक कवि, स्वप्नलोक मे, नीरव निर्जन में उसपार, ससार बसानेवाला कवि नही, वह है एक प्रबुद्ध नागरिक, अपने समाज के प्रति अपना उत्तरदायित्व समझनेवाला, उगते राष्ट्र का एक क्रान्तदर्शी तरुण, आँधी से लडनेवाला एक योद्धा, गुमराह होते हुए, गुमराह करते हुए बबुओ के बीच में, सगर्व एव अडिग खडा होनेवाला एक विद्रोही, विद्रोह फूँकने के लिए, विद्रोह दबाने के लिए, और पहले अपने देश को बधनमुक्त करने, पीछे विश्वप्रेम के गान मे लय मिलाने के लिए।

प्रेम को वह आत्मोत्सर्ग और आत्ममिलन के रूप मे ही देखता है। उसे पुण्यपुरातन और नित्य-चिरतन सत्य मानता है, भोग को हेय :

अपने मृण्मय अधर छुओ मत करो न यह पीयूष हलाहल
झरने दो निर्झर वह अविरल बनने दो प्राणों को उज्ज्वल
कोमल स्वप्न-हिंडोलो पर हे अमर सत्य के स्तम्भ ! न झूलो

वासना-विलास और कामुकता से बहुत ऊँचे उठकर प्रेम के उदात्त स्वर्गिक तल पर अपनी कविता को उसने प्रतिष्ठित किया है '

मिल रहा अमरत्व में है आज मृण्मय प्राण मेरा

विदेशीय संस्कृति से उद्भूत अशिव हाला-प्याला की दुर्गंध से उसकी आत्मा और शारीरिक सुख-वासना को ही अमर प्रेम की सज्ञा देनेवालो की छलना से उसकी चेतना जैसे उत्पीडित हो उठी है .

अपने पावन प्राण-कलश को मन-मन के मधु अमृत से भर

अविनश्वर के पूजार्चन में धर दो उसको प्रेम-पुरस्सर
अजर-अमर के आराधक तुम ! जड़ प्रतिमा के चरण न छू लो !

मानव जीवन के समक्ष दो ही तथ्य प्रधान है, एक श्रेय और दूसरा प्रेय। मद मनुष्य प्रेय की ओर दौडता है, किन्तु धीर पुरुष श्रेय का ही वरण करता है—

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ संपरीत्य विविनक्ति धीरः
श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते

तत्त्वदर्शी भारतवर्ष ने जिस ज्ञान को उपनिषद् के इस गान में मुखरित किया है, उसी की अन्तर्धारा प्रलय-वीणा की इस झकार में सुनकर हमे वडा हर्ष हुआ——

तन-मन की इन रँगरलियो में, चिर-जीवन का ध्येय न भूलो
जग-जीवन की इन अलियो में नित्य चिरन्तन प्रेय न भूलो
प्रेयस् के इस आकर्षण में सत्-शिव-सुन्दर श्रेय न भूलो

ऋषियो की ही आत्मा जैसे इस आर्यपुत्र के मुख से मुखरित हो उठी है।

प्रेम को एक दुर्बलता या हाला या विष के रूप मे चित्रित करना हम मागलिक नही समझते। आज हम शारीरिक सुख के रूप मे नही, सजीवन के रूप मे, 'आत्म-मिलन' के रूप मे, प्रेम की कविताओ की प्रतिष्ठा करेंगे, जो हमारे जीवन को विषमय नही, अमृतमय वनावें, दुखमय नही सुखमय वनावें।

इस वीणा में जहाँ सर्वत्र प्रलयाग्नि की लपटें उठ रही है, वहाँ प्रेम के अमृत के कण भी है, कुछ लघु-लघु गीतो में। वे आत्मा को वल देनेवाले हैं, दुर्वल करनेवाले नही। सच्चे प्रेम में दुख नही, एक उल्लास है। 'प्रवोध', 'अनुरोध', 'सगीतकार', 'दीप' में यह कवि इसी भावना का उपासक तथा इसी अनुभूति का गीतकार है।

मेरी अपनी राय में, कोकिल, जलियाँवाला बाग , क्रान्ति का आमंत्रण, बापू, प्रभाती, पौरुष का गीत, मानव प्रभृति के स्वर क्षणिक नही, स्थायी है और किसान, यात्रा, ताज, नारी, मिलन-पर्व, मुरली, मगलपाठ, प्रबोध, अनुरोध, जीवन-सागर, दीप आदि कवितायें मानव जीवन के चिरतन सत्य को ही व्यक्त करती है ।

मै काव्य का एक ही मापदण्ड मानता हूँ, और वह यह है कि उसका हमारी धमनियो पर, रक्त पर, हृदय पर, चित्त पर, मन पर प्राणो पर, कैसा प्रभाव पडता है ? यदि उसका प्रभाव शुभ है, कल्याणप्रद है, आनन्दमय है, ऊपर उठानेवाला है, आत्मा को, चरित्र को, नीचे गिरानेवाला नही, तो मै उसे सत्काव्य की कोटि मे रखूँगा—भले ही उसमे कविता का रस कम हो और नवरस से ओतप्रोत कविता को भी मै कविता के नाम से सबोधित न करूँगा यदि उसका प्रभाव इसके विपरीत हो। उसे कविता नही, पागल का प्रलाप समझना चाहिए। उस ओर किसी को ध्यान देने की आवश्यकता नही । इस दृष्टि से सुधीन्द्र की रचनायें सुरुचिपूर्ण पाठको के अनुरजन के गीत होगी, इसमे मुझे सन्देह नही ।

इस युग में जहाँ हिन्दी के अनेक कवियो ने निराशा, वासना, हाला, प्याला के गीत गाकर समाज, जाति तथा देश की परिस्थिति को और भी नाजुक बनाया है, वहाँ इस कवि ने परिस्थिति को सँभालने का प्रयत्न किया है । उसने काव्य के मेरुदण्ड–सस्कृति–को विकृत नही होने दिया है, उसे सीधा रखा है । भावना के द्वारा विवेक, आत्मबोध, सुरुचि, सस्कृति का व्यभिचार नही होने दिया है ।

अन्त में, हमारी मंगल कामना यही है कि क्रान्ति का यह कवि चिरजीवी हो !

सोहनलाल द्विवेदी

प्रलय-वीणा

मंगलाचरण

आज जगा दे ओ प्रलयङ्करि !
मेरी अमर प्रलय की वीणा
फूले-फले अमरवल्ली-सी
संसृति जीवन-सुधा-विहीना

जाग, जाग कल्याणि ! लगा दे
आग आज इस रक्तोत्सव में
उठ, उठ वीणापाणि ! जगा दे
अमर राग भव के जनरव में

अनलमुखी रागिनी जगा दे
कविता वह वैश्वानर-धारी
चरण बनें ज्वाला की लपटें
बने आज स्वर-स्वर चिनगारी

अरे अनल-वसने ! मृत्युञ्जयि !
ये यति-गति, स्वर-ताल न बाँधो

आज न मधुवर्षिणी ! गीत में
कोमल - कान्त - पदावलि साधो

गाओ, सुनकर प्राण-प्राण में
नवसर्जन का राग समाये
बस "उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य-
वरान्निबोधत"-स्वर छा जाये

युग-युग से तूने झंकृत की
वादिनि ! जग-जीवन की वीणा
आज शापशीर्णा-सी, जीर्णा
पड़ी छिन्न-भिन्ना वह वीणा

आज जगा दे ओ प्रलयङ्करि !
मेरी अमर प्रलय की वीणा

*

उठ, उठ ओ कविते ! मदालसे !!
जग-प्रासाद ध्वस्त होता है
ओ कल्पनारते ! रति-निरते !!
मानव आज त्रस्त होता है

स्वप्नशायिनी ! जाग, सत्य का
आलिंगन-रञ्जन करना है

मङ्गलाचरण

फूल कल्पना के बिखेर ये
आग अंक में अब भरना है

संसृति आज क्षीण रुग्ण है
शिरा-शिरा में भरा हलाहल
मानव ये दानव बन - बनकर
पीते और पिलाते पल - पल

सिसक रही चुपचाप धरित्री,
बनी सभ्यता मूक अरसना
आज पड़ी संस्कृति महीयसी
दलित, मुक्तकेशा, दिग्वसना

आज मरण के थिरक-थिरक से
मानवता है नत-हत-दीना
करुणा पड़ी कराह रही है
कुण्ठित-लुण्ठित, खिन्न-मलीना

आज जगा दे ओ प्रलयङ्करि!
मेरी अमर प्रलय की वीणा

*

आज अमर आलोक खुले नव
भव में दिव की जगें विभायें

प्रलय-वीणा

हो न अगेय अगीत रागिणी
ध्वनित हो उठें भुवन-दिशायें

सूर्य-सोम-ग्रह-ग्रह में ऊपर
खिंचे क्रान्ति की नव-रेखा-सी
प्राण-प्राण में हो स्पंदित वह
आ भू पर विद्युत-लेखा-सी

ओ विश्वम्भरि ! विश्वनाट्य की
बनो आज तुम सूत्रधारिणी
चलो मृत्तिका की धरणी पर
स्वप्नमयी ! ओ स्वर्विहारिणी !

प्रलयालये ! बहो, बढ़ लहरो
प्राणमान हो यह भव का शव
आज दिखा दो त्रस्त जगत को
अपने करुणालय का वैभव

हो लोहितलेखा रणचण्डी
ताण्डवमयी लास्य में लीना
अजर-अमरता का वर पाकर
संसृति रहे न मरणाधीना

मङ्गलाचरण

आज जगा दे ओ प्रलयङ्करि !
मेरी अमर प्रलय की वीणा

*

काल-पुरुष की बजे भैरवी
प्राण-प्राण अनुरणन कर उठे
आज विश्व की यह भंगुरता
अमरण का निक्वणन भर उठे

आज कोकिला के स्वर में भी
प्रखर अनल-रागिनी बजे मा !
आज कल्पना दिवांगना भी
लाल ज्वाल का वेश सजे मा !

आज मधुर मुरली पर मुग्धा
राधा बने प्रलय-रचयित्री
गिरिधर की दीवानी मीरा
बने क्रांति की अब कवयित्री

आज रोम-तारों पर गा दे
प्रलय-गीत करुणा-कल्याणी
मानवता का भरे अमर स्वर
उसमें वीणापाणी वाणी

प्रलय-वीणा

फूले - फले अमरवल्ली-सी
संसृति जीवन-सुधा-विहीना
आज जगा दे ओ प्रलयङ्करि !
मेरी अमर प्रलय की वीणा

प्रलय-संगीत

करो तुम आज वीणा में वही अमरण
प्रलय-संगीत की झंकार हे वाणी !
जिसे सुन कालनिद्रा से उठे जागे
हमारी देह-कारा का अमर प्राणी

उठो अब नींद से प्रलयंकरी ! धर
आज जीवन-मरण हाथों में अमृत-वीणा
चकित-सी विभ्रमित-सी देखती है
सृष्टि की यह नर्तकी दीना-विभवहीना

*

उठी हैं रक्तरसना क्रान्ति की लपटें
चतुर्दिक, राग छाया है खमंडल में
भयंकर सर्वभक्षी आग अपनी
आज लेकर नीर बैठा क्रुद्ध बादल में

युगों की तोड़ती कारा हमारे प्राण की
बिजली अचानक आज है कड़की

प्रलय-वीणा

युगों की भस्म की स्तर को उड़ाती
श्वास से नव-चेतना की वह्नि है भड़की

*

हमारी इन शिराओं में युगों का वह
जड़ित लोहित उबलकर आज उछला है
हमारे रुद्ध कण्ठों में विजय का आज
फिर चिरप्रिय चिरंतन घोष मचला है

धमनियों में धड़कता, गरजता, हुंकारता
नव स्फूर्ति का अब ज्वार आया है
सिमिटती-सी सिकुड़ छिपती बिखरती
जा रही दृग-ज्योति पाकर पाश-छाया है

*

हृदय के इस हिमालय में प्रबल विप्लव
लिये ज्वालामुखी भीषण गरज डोला
हमारे श्वास में भीषण बवण्डर इन
हमारी अस्थियों में वज्र् बज बोला

बजी है भैरवी वह युग-पुरुष की लो,
उठे हैं छमछमा वे क्रान्ति के नूपुर

झनक की आग की चिनगारियाँ पा
ये हमारी शृंखलायें जल उठीं निष्ठुर

*

समेटो आज ये विच्छिन्न वीणा के
विशृंखल तार अपना काल-स्वर साधो
अँगुलियाँ देवि वीणापाणि ! अपनी आज
नवयुग के हृदय के स्पन्द से बाँधो

चिरन्तन राग जागे देह-तन्त्री के
हमारे जर्जरित इन रोम-तारों में
प्रतिध्वनि गूँजती है नित्य अश्रुत आज
जिसकी व्योम के रवि-सोम-तारों में

*

हलाहल-पान कर सोये पड़े जो नाग
जागें कामिनी की कृष्ण अलकों में
चिरन्तन प्रलय बनकर प्रणय जागे आज
ज्वाला की शिखा ले मुग्ध पलकों में

लपेटें क्रोड़ में लीलागृहों को क्रान्ति
की उद्ग्रीव स्वर्ण-किरीटिनी लपटें

प्रलय के सिन्धु की लहरें निगलने रंग-
लीलायें विलासागार पर झपटें

*

नटी का चित्तरञ्जन नृत्य-शिञ्जन
नूपुरों का स्वन-रणन-अनुरणन मनमोहन
मिलें जाकर प्रलय के इस महासंगीत
में व्यामोहहारी एक निस्वन बन

सजग हों मुग्ध मन ये, मदविचुम्बित ये
विलोचन हों अनुप्राणित अचेतन तन
बनें ये मनविमोहन मधुनिकेतन, केलिवन,
उपवन प्रलय के नृत्य के आँगन

राग

मा वाणी ! मेरी वाणी की वीणा में वह राग जगा दे
पुण्य जागरण का जन-जन के मन में जो अनुराग जगा दे

स्वयम् प्रलय आ लय में गाये
इन स्वर-तारों को झंकृत कर
घर्षण से जिनके प्रभूत हो
महानाश का शिव वैश्वानर

प्राण-स्पर्श या धू-धू कर मा,
महाचिता बन धधक उठे तन,
अंग-अंग हो होम; रहे पर
अनवच्छिन्न-अजस्र गीत - स्वर

स्वयम् मुक्त-निर्बन्ध जगत् का बन्धन में अनुराग भगा दे
मा वाणी ! मेरी वाणी की वीणा में वह राग जगा दे

*

काँपे भूधर, सागर काँपे,
तारक-लोक खमण्डल काँपे

प्रलय-वीणा

यह विराट भूमण्डल काँपे
रविमण्डल - आखण्डल काँपे

परिवर्तन, का क्रांति-प्रलय का
गूँज उठे सब ओर घोर स्वर
देख दृष्टि हुंकार, श्रवण कर
अन्ध गन्धवह - मण्डल काँपे

जो अपने ध्वंसक स्वर से मा, प्राण-प्राण में आग लगा दे
मा वाणी ! मेरी वाणी की वीणा में वह राग जगा दे

मन में वह पागलपन छाये
जिसमें दृग-दृग के प्रहार पर
जड़ता की कड़ियाँ, परवशता-
आलिङ्गन झड़ पड़ें विनश्वर

बन - बन आसव-अमृत हलाहल
तन में जाग्रत करें महानल
परवशता के पाश गिरें जल
जिसमें गल-गल पिघल-पिघल कर

जो फूलों को तोड़, आग से मन का अशिव विराग भगा दे
मा वाणी ! मेरी वाणी की वीणा में वह राग जगा दे

*

राग

तीक्ष्ण तान के खर प्रहार कर
जो कटु कर्कशता बिखरा दे
जिसमें लय हो हेय पुरातन
ऐसा शुचि नूतन सरसा दे

पुण्य सत्य की आभा में हो
अन्तर्द्धान पाश की छाया
जाड्य - रूढ़ि- अज्ञान - मोहमय
पथ का तमसा - जाल जला दे

'ओ३म् तमसो मा ज्योतिर्गमय'-स्वर जीवन को जाग जगा दे
महाप्रलय का जो जन-जन के मन में अक्षर राग जगा दे
मा वाणी। मेरी वाणी की वीणा में वह राग जगा दे

वाणी !

वीणा तुम अपनी आज बजाओ वाणी !
कण्ठों से कविता फूट पड़े कल्याणी
तन पर अँगुली धर
शिरा-शिरा झंकृत कर
गा उठे प्रलय-रागिनी क्रान्ति दीवानी

*

जो छुए मरण को अमरण का स्वर फूटे
मानव का आत्मन् काल-पाश से छूटे
हो पार्थिव काया
पर न पाप की छाया
भव भी दिव-वैभव छीन, सुधारस लूटे

*

हुङ्कार भरें हम, अखिल धरित्री डोले
भ्रू तने, नियति ये बन्ध युगों के खोले
हम उठें, गगन हो खलबल
सागर टलमल
हम चलें, वज्र में विजय हमारी बोले

जीवन

आज विश्व-जीवन है अघ की
छाया से आक्रान्त
पड़ा हमारे प्राणों पर है
मूर्च्छा का अभिशाप

आज मोह में मुग्ध-लुब्ध जग
जड़ीभूत - उद्भ्रान्त
तमसाच्छन्न किये आँखों को
विजिगीषा का पाप

*

आज मरण के धक्के से
जीवन है हतप्रभ, म्लान
श्रान्ति-चुम्बनों से तन है
निश्चेष्ट और निस्पन्द

है आत्मा विमूढ़, स्तम्भित,
चेतना आज निष्प्राण

प्रलय-वीणा

गूँज रहे श्रुति में
रोदन-क्रन्दन के गीत अमन्द

आज हमारे ही पापों का
यह भीषण चीत्कार
रही - सही चेतना रक्त की
आज रहा है छीन

टूक-टूक हो रहा हृदय
सुन-सुन यह हाहाकार
नर - शोणित की होली से है
उर - उल्लास मलीन

*

हम अन्तर्वेदना लिये हैं
अदमनीय-सी आज
वाङ्मय होकर भी सचमुच हम
जीभ न सकते खोल

लकवे-सी आ गिरी शिरों पर
सर्वनाश की गाज
है कण-कण में संघर्षण,
विप्लव है, है भूडोल !

जीवन

आज प्यार की थपकी-सा
लगता है - निठुर प्रहार
लोरी-सा हुंकार, सिंहरव
कोकिल का सा गीत

प्रलय, प्रलय रे महाप्रलय की
व्यापक आज पुकार
अग्रदूत है क्रान्ति और हम—
आज क्रान्ति से भीत

*

कवि, गायक, नायक सब हैं
तूफ़ान - विकम्पित पोत
उखड़े आज विवेक, बुद्धि-बल,
धृति, धी, अंतर्दृष्टि

जिसमें हो जाये क्षण - क्षण
जीवन का ओतप्रोत
करे स्वयम्भू स्वयम् आज आ
ऐसी अमृत - वृष्टि

———

बन्धन

क्यों न तुम्हारे जीवन के मा !
बँधे हुए क्षण
रहें कसकते श्वास-श्वास में
यहाँ शूल बन ?

कीलित-से जब आज बने हैं
सबके तन-मन
भौतिकता से रुद्ध-बद्ध है
मानव - जीवन

❊

पाशमुक्त है साध्य, किन्तु
बन्धनमय साधन
मुक्तिहीन है जग-जीवन
निर्बन्ध अबन्धन

है गतिरहित अजीवन, जीवन
है संघर्षण

करें अमर-जीवन-साधन,
या मरणाराधन ?

*

जिसका स्पन्दन पा होते चेतन
विजड़ित कण
करो संचरित मृण्मय घट में
शाश्वत जीवन

तेजानल से स्खलित-गलित हों
ये जड़ बन्धन
सुमन-माल बन करें तुम्हारा
वे पद-वन्दन

वर्त्तमान

नाचो-नाचो ओ प्रलयंकर !
ओ शिव-शंकर, ओ विश्वम्भर !
नाचो ओ अतीत के गौरव !
नाचो भावी के प्रकाश-धर !

*

नाचो, फटे जीर्ण यह अम्बर
टूट पड़े तारागण झर-झर
नाचो, डोल उठे धरणीतल
खौल उठें ये सातों सागर
नाचो, नाचो, हिलें धराधर
उबल पड़ें नद, नीरद, निर्झर
नाचो, तन-तन, प्राण-प्राण का
कण-कण काँप उठे थर-थर-थर

नाचो-नाचो ओ प्रलयंकर !
ओ शिव-शङ्कर ! ओ विश्वम्भर !

*

वर्त्तमान

गाओ, मृत्युञ्जय ! मोहन की
मुरली में अमरण निस्वन भर
गाओ, जीर्ण-जड़ित प्राणों में
फूँक-फूँक नवचेतन का स्वर

गाओ, विश्वविपञ्ची के ये
ज्वालामुखी तार झंकृत कर
गाओ हे, दानव के तन में
भर मानव का प्राण अनश्वर

नाचो-नाचो ओ प्रलयङ्कर !
ओ शिव-शंकर ! ओ विश्वम्भर !

*

बजे प्रलय-वीणा विराट वह
बजे क्रान्ति-नूपुर रुन-झुनकर
बजे काल की भैरव भेरी
बजे भैरवी का बोधक स्वर

बजे नवल नवयुग का डमरू
गीत किंकिणी का जाये मर
बजे आज कवि की कविता में
रुद्रगीत का अक्षर-अक्षर !

नाचो-नाचो ओ प्रलयङ्कर !
ओ शिव-शङ्कर ! ओ विश्वम्भर !
नाचो, ओ अतीत के गौरव !
नाचो भावी के प्रकाश-धर !

आवाह्न

प्रलयङ्करि, प्रलय मचाती आ !
कर जर्जर ध्वस्त पुरातन को
नव-नूतन को सरसाती आ !

तू चीर मेघ का वज्र् वक्ष
बिजली-सी चमक गरजती आ !
सागर की लहरों में विराट
वीणा-सी उठ-उठ बजती आ !
धू-धू कर जलती ज्वाला की
लोहित लपटों में सजती आ !

युग-युग से मौन पड़े नूपुर
नक्षत्र-निकर झनकाती आ !
प्रलयङ्करि, प्रलय मचाती आ !

*

तू उड़ती दशों दिशाओं से
झञ्झा-सी घोर घहरती आ !

तू सूर्य-सोम की आँखों से
ज्वाला-सी बनी उतरती आ !
शिर धरे क्रांति का नव किरीट
प्राणों की भीति छितरती आ !

तमसा में रुद्ध-बद्ध भव को
वैभव का मार्ग दिखाती आ !
प्रलयङ्करि, प्रलय मचाती आ !

*

तू बना धरा को रंग-मञ्च
युग-नट के साथ थिरकती आ !
कर ताण्डव-लास्य सर्वहारा
लीला से पुलक किलकती आ !
पदचापों में भूकम्प लिये
नख से अंगार छिटकती आ ।

तू चढ़ी प्रलय के स्यन्दन पर
नवयुग का शंख बजाती आ !
प्रलयङ्करि, प्रलय मचाती आ !

युग-धर्म

तू बजा विश्व की बीन क्रान्ति !
मै तेरे स्वर में गाऊँ
रवि की ज्वाला, शशि का अमृत
इन आँखों में भर लाऊँ

अपनी लहरों की अँगुली से
सोये प्राणों के छेड़ तार
जीवन की जर्जर वीणा के
युग-युग से विकृत स्वर सुधार

मै जिसके प्राणद स्पन्दन से
अणु-अणु को झंकृत पाऊँ
तू बजा विश्व की बीन क्रान्ति !
मै तेरे स्वर में गाऊँ

*

दे ताल उदधि अपनी भीषण,
छेड़े ब्रह्माण्ड अगीत गान

हो व्याप्त घोर प्रलयान्धकार
मूर्च्छित अतीत, च्युत वर्त्तमान

वाणी में घन का घोर घोष,
दृग में बिजली भर लाऊँ
तू बजा विश्व की बीन क्रान्ति !
मैं तेरे स्वर में गाऊँ

*

सुन काल-नटी की नूपुर-ध्वनि
हो शेष मुग्ध, मुद्लुब्ध व्योम
बुद्बुद-से शून्य सिन्धु-ऊपर
नाचें उडु, पृथिवी, सूर्य, सोम

हो अमर गान का अभिनन्दन
वह प्रलयंकर स्वर छाऊँ
तू बजा विश्व की बीन क्रान्ति !
मैं तेरे स्वर में गाऊँ

*

छिप जाय 'ध्वंस', हो 'द्वेष' ध्वस्त,
मिट रक्तपात, खो जायँ पाप

युग-धर्म

मानवता हो उद्भूत पूत,
जागे संस्कृति अकलुष - अपाप

प्राणों में अमरत्वाम्बुधि से
भर सत्-शिव-सुन्दर लाऊँ
तू बजा विश्व की वीन क्रान्ति !
मैं तेरे स्वर में गाऊँ

———

अनल-गान

गाये हैं मैंने प्रणय-गीत
छेड़ी है मैंने करुण तान
मैं आज प्रलय की वीणा पर
गाने बैठा हूँ अनल-गान

*

वाणी की विद्युत-रेखा से
छू-छू ये विजड़ित शिरा-तार
चेतन कर कीलित कण-कण को
कर दूँगा जड़ता-जाल क्षार

मेरे गायन की प्रति यति-गति
है पर्व साधना का महान
मैं आज प्रलय की वीणा पर
गाने बैठा हूँ अनल-गान

*

धारा जीवन की कर विमुक्त
युग-युग की जड़ ग्रंथियाँ खोल

अनल-गान

कलकल करती स्वर्सरिता की
ला दूँगा मैं मरु में हिलोल

पल्लवित, प्रफुल्लित, फलीभूत
कर दूँगा संसृति का श्मशान
मैं आज प्रलय की वीणा पर
गाने बैठा हूँ अनल-गान

*

इन प्राणहीन कंकालों में
कर आज प्रतिष्ठित पुण्य प्राण
हतस्नेह दृगों में जगा दीप
दीपित कर दूँगा रुद्ध ज्ञान

पार्थिव कण-कण से आत्मन् का
होने दो नीरांजन-विधान
मैं आज प्रलय की वीणा पर
गाने बैठा हूँ अनल-गान

प्रलय-याग

मेरे गीतो, जल उठो आज
प्राणों में भरकर प्रखर आग

*

अंगार बने अक्षर-अक्षर
चमकें स्फुलिंग-से ये स्वर-स्वर
धू-धू करती सब ओर उड़े
जिनकी झंकृति की लहर-लहर

जलकर भी पर अकलंक रहे
सीता-सा कविता का सुहाग
मेरे गीतो, जल उठो आज
प्राणों में भरकर प्रखर आग

*

जल जायें समिधा बन बन्धन
पड़कर जिसमें जीवन-कञ्चन
तन-मन का कल्मष-कलुष जला
चमके आत्मन् बन-बन कुन्दन

प्रलय-याग

संसृति के भावी-मस्तक पर
खिल उठे तिलक-सा स्वर्ण-राग
मेरे गीतो, जल उठो आज
प्राणों में भरकर प्रखर आग

*

मेरी वीणा से फूट पड़े
युग-युग से बद्ध-निरुद्ध अनल
उत्तप्त हो उठे भू-मण्डल
प्रज्वलित हो उठे नभ-अञ्चल

मेरे गायन की हवि लेकर
युग-पुरुष रचे आ प्रलय-याग
मेरे गीतो, जल उठो आज
प्राणों में भरकर प्रखर आग

———

जलियाँवाला बाग

भड़क उठ जलियाँवाले बाग !
धधक उठ जलियाँवाले बाग !!

*

छोड़ दे अपनी ऐसी साँस
कलेजे तक डाले जो चीर
फूँक दे कंकालों में प्राण
शहीदों के दिल की वह पीर

खून से धरती तेरी लाल
छिपे उसमें कितने अरमान।
रमी है आज़ादी की चाह
धूल है तेरी तीर्थ-समान!

अगर तू चाहे फिर भी आज
उठें तुझसे शहीद वे जाग

भड़क उठ जलियाँवाले बाग !
धधक उठ जलियाँवाले बाग !!

*

जलियाँवाला बाग

अरे, ओ जलियाँवाले बाग !
छेड़ कुछ ऐसा विप्लव-राग
चल पड़ें सोये हुए शहीद
चित्त में ले प्राणों का त्याग

फूल ! तुम धधक उठो विकराल
पखड़ियों से निकले वह ज्वाल
भस्म हो जाये जिसमें आप
शृङ्खलाओं का दुर्भर जाल

तुम्हारा लोहू-सिंचा पराग
वीर वाला का बने सुहाग

भड़क उठ जलियाँवाले बाग !
धधक उठ जलियाँवाले बाग !

*

अरे, ओ जलियाँवाले बाग !
तुम्हारा वह शोणित का फाग
उड़ेलो हमपर हम मिल आज
करेंगे महाक्रान्ति का याग

करेंगे अपने तन को होम
जलेंगे जिसमें सारे पाप

भस्म हों वन्धन-इन्धन सर्व
मिटे यह युग-युग का सन्ताप
करे कुन्दन-सा हमें ज्वलन्त
प्रखर वह वलिवेदी की आग
भड़क उठ जलियाँवाले वाग !
धधक उठ जलियाँवाले वाग !

*

अरे, ओ जलियाँवाले बाग !
अरे, उन रूहों का घन-जाल
चढ़े, ला दे भीषण भूचाल
सहम जायें सोते कंकाल
हमारे ज्वालामुखी प्रसुप्त
उगलने लगें प्रलय की ज्वाल
हमारी इन आँखों की ज्योति
लड़े तमसा से बनकर व्याल
अमरता करे आज आह्वान
जिसे सुन उठे आत्मवल जाग
भड़क उठ जलियाँवाले वाग !
धधक उठ जलियाँवाले बाग !!

*

जलियाँवाला बाग

शहीदों की हड्डी के खण्ड
बनेंगे उठ-उठ वज्र प्रचण्ड
लहू के उनके छींटे लाल
बनेंगे अग्नि-स्फुलिंग कराल

भस्म हो जिसमें पाशव शक्ति
खिलेंगे मानवता के फूल
यहाँ होगा वह स्वर्ण-विहान
कि पल-पल जिसका मंगलमूल

हिमालय के शिखरों पर और
प्रलय का छिड़े अनूठा राग

भड़क उठ जलियाँवाले बाग !
धधक उठ जलियाँवाले बाग !!

भारत

उठ, उठ ओ मेरे वन्दनीय !
अभिनन्दनीय भारत महान !

*

तेरे इस भाल हिमालय पर
देता कुंकुम का तिलक व्योम
आरती नित्य नव दीप लिये
तेरी उतारते सूर्य-सोम

दिव ने पहनाया तुझे स्वयं
गंगा का पावन कण्ठहार
तेरे चरणों को धोता है
लहरा-लहरा सागर अपार

छाया विश्वम्भर-सा ऊपर
तेरी महिमा का यह वितान
करते तेरा अभिषेक मेघ
कर स्वयं स्वर्ग से अम्बदान

भारत

उठ, उठ ओ मेरे वन्दनीय !
अभिनन्दनीय भारत महान !

❀

रहते थे जब वे खोहों में
सब अनिकेतन, अवसन, कराल
था तब देवों का लीलास्थल
तेरे घर का आँगन विशाल

अपने मन की भी बात बोल
पाता था मानव जब वहाँ न
तब तपोवनों में यज्ञ यहाँ
होते थे, घर में सामगान

जब काल-रात्रि थी उधर घोर
था इधर हुआ पहला विहान
वे वन-मानुष थे उधर, इधर
उड़ते थे तब नभ में विमान !
उठ, उठ ओ मेरे वन्दनीय !
अभिनन्दनीय भारत महान !

❀

चरणों में तेरे बैठ-बैठ
शिक्षा-दीक्षा लेकर जहान

गाता था धर्मादेशों में
तेरे गौरव के गीत-गान

थे कृष्ण-राम, थे बुद्ध-वीर
महिमान्वित जिनसे धरा-धाम
वह विक्रम, प्रियदर्शी अशोक
थे जो जीवन में पुण्यकाम !

आलोकित जग में आज हुआ
तेरी विद्या का विभा-दान
ओ मुक्तिमन्त्रधाता ! स्वतन्त्र !
गौरवनिधान, ओ महाप्राण !
उठ, जाग जाग मेरे महान !
अभिनन्दनीय भारत महान !

*

तू उठा हिमालय-सा ललाट
है देख रहा मानो त्रिकाल
उज्ज्वल अतीत, यह वर्तमान
धूमिल-मलीन, भावी विशाल

कितनी सदियाँ, कितने युग-युग
बीते कितने ही वर्ष-मास !

भारत

देखा संसृति ने स्वर्ण-वर्ण
तेरे सतयुग का वह विभास

देखा जग ने वह स्वविहान
गौरवित चक्रवर्त्तित्व - मान
आये बढ़-चढ़ वाहिनी लिये
यूनान, अरब, तुर्की, इरान

खोला तुमने निज हृदय-द्वार
आये वे तुमने दिया अङ्क
माँगा तुमसे शिर-क्रीट दिया
सहकर भी उर में प्रखर डङ्क

आये वे बन-बन आक्रामक
पर उन्हें मिला प्रिय आतिथेय
अर्पण तुमने सर्वस्व किया
धर्षण पर उनका रहा ध्येय

युग-युग तक चलता रहा यहाँ
अन्याय, उपप्लव, अनाचार
भृकुटी न तुम्हारी किन्तु खिची
तुम रहे देखते सब उदार !

अन्तर से करुणाधार बहा
सींचा तुमने जिसको महान
वह हरा-भरा आँगन-उपवन
अब उजड़ गया मानों श्मशान
उठ, उठ ओ मेरे वन्दनीय!
अभिनन्दनीय भारत महान!

*

जागो अशोक! वह स्वर्ण-मुकुट
पश्चिम दिशान्त में हुआ अस्त!
जागो विक्रम! वह सिंहासन
वह छत्र तुम्हारा हुआ ध्वस्त

जागो मोहन! लो पांचजन्य,
अब धर्म हो गया पाप-ग्रस्त
जागो पुरुषोत्तम! है मानव
दानव से शंकित, भीत, त्रस्त

जागो, गौतम! धरणी पर फिर
कर रहा मनुज है रक्तस्नान
जागो-जागो हे महावीर!
होता है नर-बलि का विधान!

जागो जागो हे वन्दनीय !
अभिनन्दनीय, भारत महान !

*

जापान जगा, जर्मनी बढ़ा
आया आयर में नवप्रभात
जागो-जागो आलोक खिला
बीती युग-युग से पड़ी रात

कह दो तो अपनी उठा बाँह
पल एक धरा का चक्र रोक :
विश्वम्भर ! अब विध्वंस न हो,
अब निखिल मेदिनी हो विशोक

आये नव-स्पंदन, उठे लहर
जर्जरित चेतना उठे जाग
इन शीर्ण हड्डियों में फिर से
जल उठे क्रान्ति की प्रखर आग
उठ ओ विराट ! उठ ओ महान् !
मेरे मृत्युञ्जय ! जाग, जाग !

*

पाटलीपुत्र में जगे आज
युग-युग से सोया चन्द्रगुप्त

जिसके आगे हो अलक्षेन्द्र
की विश्वविजय की चाह लुप्त

चल पड़े महोबे से ऐसी
दिशि-दिशि में वह हलचल अपार
रज के कण-कण से जाग उठें
अगणित आल्हा-ऊदल कुमार

सिक्खों में आज दहाड़ उठे
गोविन्दसिंह का शौर्य्य जाग
रे, आज पञ्चनद में फिर से
पुरु के पौरुष की उठे आग
उठ, उठ मेरे भारत महान!
मेरे ज्योतिर्मय! जाग-जाग!

*

फिर जाग उठे बुन्देलों में
वह वीर-बाँकुरा छत्रसाल
इतिहास-पटल पर स्वर्ण-वर्ण
अंकित है जिसका यश विशाल

कर उठे मराठों में गर्जन
वह शिवा केसरी, पुरुष-राज

जाना जिसने जग में अपने
प्राणों से भी बढ़कर 'स्वराज'

ले विभा अलौकिक चमक उठे
मरु-कणिकाओं की बुझी आग
पत्थर-पत्थर से फूट पड़े
क्षत्रिय का आत्मोत्सर्ग-त्याग!
उठ, उठ मेरे भारत महान!
मेरे अभयंकर! जाग, जाग!

❋

जूझे उठ राजस्थान आज
हल्दीघाटी का लिये दाप
पद्मिनी अंगना का 'जौहर'
बाप्पा, प्रताप का ले प्रताप

जागे जमुना में स्वाभिमान
जागे गंगा में क्रान्तिगान
कृष्णा-ताप्ती, नर्मदा-सिन्धु,
साँपू-शतद्रु दें अनलदान

सोयी आशायें उठें जाग
रोमों में तन के जगे आग

प्रलय-वीणा

युग-युग से कीलित जिह्वा में
जग उठे अचानक प्रलय-राग
उठ, उठ मेरे भारत महान!
मेरे प्रलयंकर! जाग, जाग!

× × × ×

तुम लो करवट, हिल उठे धरा
डोले अम्बर का रत्न-जाल
अँगड़ाई लेने लगे विश्व
लहरें सागर के अन्तराल

हो आज हिमालय अनलालय
हिम-बिन्दु बनें ये अग्नि-खण्ड
धर लो मानवता का विशाल
इसके कन्धों पर केतु-दण्ड

क्षणभंगुर नश्वर जीवन में
अजरामर-अक्षर उठे जाग
जीवन की कृति-कृति में जागे
सत-शिव-सुन्दर ओ महाभाग!
उठ, उठ मेरे भारत महान्!
मेरे अमृतमय! जाग, जाग!!

पाञ्चजन्य

रे, यह क्या युग से जड़ीभूत
जागरुक आज है शैलराज!
छूने को ऊँचा आसमान
उठ रहा उच्छ्वसित उदधि आज
है तक्षशिला से सेतुबन्ध
तक हुई लहर-सी प्रवहमान
कैलास, विन्ध्य, नर्मदा, सिन्धु
हो उठे अचानक प्राणमान

वह सिन्धु-शतद्रु-वितस्ता का
क्रीड़ाङ्गण प्रिय पंचनद देश
बनकर पुरु दिखलाने आया
आक्रान्ता को पौरुष अशेष
युग-युग से विश्रुत पृथीराज
का पुण्य पुरातन इन्द्रप्रस्थ
बढ़ रहा अरे, किस ओर किये
अपने प्राणों को करतलस्थ!

इस पार्थ-सारथी के ब्रज में
हलधर-समेत गोपाल आज
अत्याचारों का ध्वंस-भ्रंश
करने को हैं सज रहे साज
इक्ष्वाकु, दिलीप और रघु का,
राघव का वह कोशल प्रदेश
है व्रती राम-सा आज
आततायी को करने नामशेष
अपना अतीत कर रहा याद
विक्रम का वह मालव महान
है निभा रहा कुम्भा, साँगा,
'पत्ता' का राजस्थान आन
वरवीर शिवाजी का स्रष्टा
वह महाराष्ट्र है अविश्रान्त
ये द्रविड़-वंग कटिबद्ध आज
थी कभी न जिनकी भ्रांत-क्लांत
उस यशःकाय नल का स्मारक
विश्रुत विदर्भ उठकर सगर्व
कहता है : कर दूँगा पल में
ध्वंसक-धर्षक का गर्व खर्व

कीर्तिध्वज छत्रसाल-शोभी
अच्युत-अदम्य बुन्देलखण्ड
कर रहा क्रान्ति का महाह्वान
बन समर-यज्ञ-होता प्रचण्ड
है ऊर्द्ध्व जगत-गौरव विहार
जो मूर्त्त सत्य की अमर शोध
आँगन में जिसके हुआ प्रथम
गौतम को तम में ज्योतिबोध

× × ×

रे, हमें याद है भीम-भीष्म
भाई-भाई का महायुद्ध
भारत जब था उद्भ्रान्त-श्रान्त
व्यामोह-लुब्ध, विक्षुब्ध-रुद्ध
रण में 'तस्मादुत्तिष्ठ' और
'युद्धस्व' आदि से दे प्रबोध
था हृषीकेश ने किया परं-
तप का विलीन वह मार्गरोध
आया है गत इतिहास लौट
इतने युग-युग के बाद क्या न ?
है भूल गया क्या विश्व उसे
दे गया कि जो वह अमर ज्ञान ?

अश्रुत-अभूत यह समर आज
है जहाँ न हन्ता और हन्य
मोहन हैं जिनके हाथ सत्य
का चक्र, प्रेम का पाञ्चजन्य
कर रहे बन्धु से वह अनुनय
मिल जाय बन्धु को न्याय्य स्वत्व
अन्यथा अमानुषता का शिर
अवनत कर देगा मानवत्व
यह राज्य-विभव-लिप्सा नर की
जिसके प्रतीक—विध्वंस-भ्रंश
शोषण-धर्षण ये हेय पाप !
यह मानव में पाशविक अंश

× × ×

सज रहे सैन्य, हो रहे घोष—
'हम सजग, जागरूक, सावधान !'
बस पाञ्चजन्य की ओर यहाँ
लग रहे विश्व के आज कान

रामगढ़-कांग्रेस के अवसर पर लिखित]

क्रान्ति

अमरण यह तन, चिन्मय यह मन, सत्-चित-शाश्वत मेरा जीवन

*

मै अमर-नर्तकी संसृति की
ब्रह्माण्ड कि जिसका नृत्यांगन
रवि-शशि से जिसके युगल नयन
नक्षत्र-निकर मंजीर चरण
झलके हैं भाल-धरित्री पर
सागर बन श्रम के सीकर-कण
मै सजे प्रकृति का वेश रुचिर
कर रही चिरन्तन हूँ नर्तन

कण-कण में प्राणों-प्राणों में है गूंज रहा 'रुनझुन'-'झनझन'
अमरण यह तन, चिन्मय यह मन, सत्-चित-शाश्वत मेरा जीवन

*

मै करती तिक्त-गरल-सावन
मै करती मधुर-सुधा-सिञ्चन

मेरी साँसों में गुँथे हुए
ये प्रलय-प्रभंजन, मलय पवन
यह दिन क्या है? मेरे मुख पर
खिलता उज्ज्वल स्मिति का दर्शन
रजनी क्या है? तामसवाले
नयनों की क्रोधभरी चितवन
मेरे मुद्रा-परिवर्तन में लय होते जाते हैं क्षण-क्षण
अमरण यह तन, चिन्मय यह मन, सत-चित-शाश्वत मेरा जीवन

*

मेरे इंगित पर होता है
यह राष्ट्रों का उत्थान-पतन
मेरी मुद्रा पर होता है
विप्लव-तांडव, वैभव-वर्षण
मेरी लीलाओं की झाँकी
संस्कृति-सुषमा, संगर भीषण।
प्राणों का यह जाग्रति-मूर्च्छन
मानव का जीवन और मरण
मेरे चरणों की काल-चाप करती इतिहासों का अङ्कन
अमरण यह तन, चिन्मय यह मन, सत्-चित-शाश्वत मेरा जीवन

*

क्रान्ति

मेरी पदध्वनि सुन-सुन होता
वसुधा की काया में कम्पन
मेरी छाती की धड़कन है
यह कड़क वज्र की, घन-गर्जन
मेरे नर्तन की लय में है
होता विश्वम्भर का गायन
मेरे नर्तन के स्वर में है
यह विश्व-विपञ्ची का वादन
मैं नहीं कभी बनने देती संसृति का उत्सव शून्यस्वन
अमरण यह तन, चिन्मय यह मन, सत्-चित-शाश्वत मेरा जीवन

कवि

मूर्च्छित प्राणों को छा लेता
जब जड़ता का उन्माद मधुर
तन्द्रिल स्वप्निल मादकता की
मधु छाया में सो जाता उर

जब मधुर विलास-निशीथ जान
सालस होते मन-वपुप-प्राण
अन्तस्तल के कण-कण को जब
आ चुम्बित करते मदन-बाण !

जब दृग के आगे घिर आता
विभ्रम-तमसा का तम निष्ठुर

तब ऊपा-सा आलोक जगा
प्राणों का जाग्रति-शङ्ख फूँक
हर लेता मूर्च्छा-व्यूह भगा
आँखों का धूमिल अन्धकार

कवि

वह रवि हूँ !
मै कवि हूँ !

※

ले शोणित-बिन्दु शिराओं के
निश्चलीभूत, निस्पन्द, विफल;
उर की जघन्य निश्चेतनता
ले दृग की अश्रुधार अविरल;

प्राणों का चिर अवसाद मिला,
धी का व्यामोह-प्रमाद मिला,
जीवन का विकलोच्छ्वास
धीमी धड़कन का नाद मिला,

हवि बनवाकर इस मिश्रण से
मैं प्रस्तुत करता होता-दल;

फिर करता हूँ अपना चाहा
आयोजित नव जागरण-सत्र
उसमें मै नवयुग गा-गाकर
उन हाथों करवाता स्वाहा

वह हवि हूँ !
मै कवि हूँ !

※

घन-घटा देखकर अम्बर की
छाती पर उमड़-घुमड़ छाती
जब साक़ी के आवाहन में
हों आँखें जग की मदमाती

हों मद से ओतप्रोत नयन
प्राणों का हो प्रणयप्रणयन
हो बन्धन में अवरुद्ध-लुब्ध
निर्बन्ध जगत का मनोन्नयन

जब उस खुमार में लुट जाये
धाता की प्राणों-सी थाती

तब चमका निज असि की धारा
उस स्तेन, लुटेरे, धर्षक को
मैं कर दूँ संकटग्रस्त-त्रस्त
जाग्रत उन्मद को, मादक को

वह पवि हूँ!
मैं कवि हूँ!

*

जब घ्राणेन्द्रिय को महापतन
की आये भीषण घ्राण यहाँ

कवि

अन्धड़-तूफान निराशा का
जब लगे घोंटने प्राण यहाँ

हो जड़ीभूत जग की काया
उद्भ्रान्त कर रही हो माया
जब उसे निगलने चले राहु
लेकर अपनी छलना-छाया

आपद की आँधी गरज वधिर
जब करे जगत के कान यहाँ

विप्लव-अशान्ति की बढ़े बाढ़
मेरे जग का हो श्वास रुद्ध
तब मैं अनलस, चेतन, प्रबुद्ध
देता हूँ छाती बढ़ा-अड़ा,

वह अवि हूँ!
मैं कवि हूँ!

*

जब होते आकुल प्राणों के
रोदन में डूबे हास-गीत
अधरों के अस्फुट स्पन्दन में
लय गौरव के उल्लास-गीत

होते न अनावृत कर्णद्वार
जब अन्तर की सुन-सुन पुकार
जब वाणी में हृग्गत होता
उर-अन्तराल का अन्धकार

रो पड़ती गिरा स्वयम् अपने
सुन-सुन चिर-म्लान उदास गीत

जब शब्द-जाल में लुब्ध कलम
बस चीख-चीख उठती केवल
तब सत्य-शिवम्-सुन्दर गाकर
जग-वाणी में भर देता बल

वह कवि हूँ !
मैं कवि हूँ !

*

सुन कर्त्तव्यों का आवाहन
जब व्रती वीर बढ़ते पथ पर
निज वज्र-वक्ष से चीर शैल
पद से पथ-कण्टक दल-दलकर

फिर उनके प्रति-प्रति पद-प्रहार
पर होती भू भी कम्पमान

कवि

नभ भी जिनके अभिनन्दन में
गुञ्जित हो गाता विजय-गान !

फिर हो जाते जो हेम अमल
खर विपदानल में तप-तपकर

तब स्वयं स्वर्ग का पुण्य हास
दीपित होता उनके मुख पर;
मैं अपने मङ्गल-गीतों से
कर देता तब उनकी द्युततर

मुख-छवि हूँ !
मैं कवि हूँ ।

प्रभाती

जाग, ओ मधुवर्षिणी ! रसरंगिणी ! अब गा प्रभाती

सुमन-शय्या पर सुकोमल
रात के भुजबन्ध बिखरे
देख ज्वाला कल्पना के
स्वप्नपट के चित्र सिहरे

अब न और मदालसा की किङ्किणी है झनझनाती
जाग, ओ मधुवर्षिणी ! रसरंगिणी ! अब गा प्रभाती

चेतना के सिन्धु में जा
सोम का मधु-कलश ढुलका
प्राण ने आकर छुआ मुख
खुल गया मंजुल मुकुल का

एक स्पन्दन में धरा की उठी फूल विशाल छाती
जाग, ओ मधुवर्षिणी ! रसरंगिणी ! अब गा प्रभाती

वज्र-कारा तोड़ता किस
लोक से आलोक आया !

प्रभाती

सिन्धु ने वीणा उठाकर
चपल अंगुलि को चलाया

उठ रहीं ऊँची तरंगें भैरवी स्वर को जगाती
जाग, ओ मधुवर्षिणी ! रसरंगिणी ! अब गा प्रभाती

अब धमनियों में प्रकृति की
फैलती है ज्योतिधारा
पहन ली उसने हृदय पर
रश्मिमाला तिमिरहारा

आ रही है आरती ले क्रान्ति मंगल गीत गाती
जाग, ओ मधुवर्षिणी ! रसरंगिणी ! अब गा प्रभाती

ओढ़ अपनी चन्द्रिका,
बिखरा सुमन की सृष्टि अपनी
जा रही आँसू बहाती
भूमि पर गतिशिथिल रजनी

आ उषा लो बालरवि के भाल पर कुंकुम लगाती
जाग, ओ मधुवर्षिणी । रसरंगिणी ! अब गा प्रभाती

अरुण पाटाम्बर बिछा है,
बरसता अमृत गगन में

क्षितिज तोरण-द्वार सज्जित
हो गया है आगमन में

जाग, वीणावादिनी प्राची विभा-वीणा बजाती
जाग, ओ मधुवर्षिणी ! रसरंगिणी ! अब गा प्रभाती

युग-वन्दन

कवि, आज क्रान्ति युग का वन्दन !
है आज पुरातन लगा रहा
नूतन के मस्तक पर चन्दन !

शोणित में आया नव-चेतन
साँसों में छाया नव-स्पन्दन
वीणा में फूटा स्वर नूतन
कण्ठों से आज नया गायन

युग-युग के आज अचानक ही
जर्जर हो बिखर पड़े बन्धन !
कवि, आज क्रान्ति युग का वन्दन !

*

बरसे स्वर-स्वर से जीवन-कण
लहलहे लता वन लघु जीवन
उतरे विष भी, उन्माद मिटे
चेतन कीलित-से मानव-मन

लोहित-तर्पण से ऊब उठा
मानव का दानव आनन्दन !
कवि, आज क्रान्ति युग का वन्दन !

*

कर-कर उर से अमृत-सिञ्चन
अभिषिक्त करो ये पुण्य चरण
शत-शत प्राणों के दीप जगा
होने दो नूतन पूजार्चन

चिर-अमर सत्य-शिव-सुन्दर का
अब हो अभिवन्दन-अभिनन्दन !
कवि, आज क्रान्ति युग का वन्दन !

कोकिल

अब छोड़ प्रणय की तान अरी,
अब गीत प्रलय के गा कोकिल !

फूले उपवन में फूल कहाँ ?
है चन्द्रकिरण भी शूल यहाँ !
आती विभावरी भी ओढ़े
तमसा का वज्र-दुकूल यहाँ !

अब अग्निकणों को चुनना है,
कलिकायें दे बिखरा कोकिल !

अब छोड़ प्रणय की तान अरी,
अब गीत प्रलय के गा कोकिल !

*

अन्तर में आज उफान उठा
जीवन में है तूफान उठा
री, रंगमहल की वीणा से
है आज क्रान्ति का गान उठा

वैभव से फटते महलों में,
तू प्रलय-लहर लहरा कोकिल !

प्रलय-वीणा

अब छोड़ प्रलय की तान अरी,

अब गीत प्रलय के गा कोकिल !

*

विभ्रम है आज दिशाओं में

विष घुला शरीर-शिराओं में

आसव से जड़ता-सी छायी

आँखों की इन रेखाओं में

अब कालकूट की लहरों में

अमृत का स्पन्दन ला कोकिल !

अब छोड़ प्रणय की तान अरी,

अब गीत प्रलय के गा कोकिल !

*

जग में आकुल स्वर बोल रहा

जग घुली ग्रन्थियाँ खोल रहा

इस घने अँधेरे में जीवन

उजियाली राह टटोल रहा

झनकाकर जड़ जीवन-वीणा,

नवजीवन-स्वर सरसा कोकिल !

अब छोड़ प्रणय की तान अरी,

अब गीत प्रलय के गा कोकिल !

चित्रकार

यदि तू है युग का चित्रकार
तो दृश्य दिखा वे देख जिन्हें
जगती की हृदय-विपञ्ची के
झंकृत हो जायें तार-तार

कर चित्रित वैभव-दैत्य भीष्म
अपनी धन की जिह्वा से जो
करता रहता नित नराहार
यदि तू है युग का चित्रकार

*

दिखला चित्रित अब प्रभुता की
वह सर्वभक्षिणी महा-आग
तू दिखा चित्रपट पर विप्लव
खेलता प्राण से प्रलय-फाग

आहों की भीषण चिता बना
जिसकी लपटों में धायँ-धायँ

प्रलय-वीणा

जल-जल होता अभिमान क्षार
यदि तू है युग का चित्रकार

*

अंकित कर अपनी तूली से
दलितों-दीनों की मूक आह
भर दे चित्रों में रंग संसृति
की मूक वेदना के अथाह

कर मूर्तिमान रेखाओं में
तू अन्यायी का दर्प-दाह
अङ्कित कर महलों को ढाता
झोपड़ियों का क्रन्दन-कराह

तू कंकालों की हड्डी की
चक्की में पिसते दिखलाना
वे धनागार, वैभव-विहार
यदि तू है युग का चित्रकार

*

दीनों की बरुनी-तूली से
चित्रित कर ऐसे प्रलयगीत
जिनको गा-गाकर हो यह जग
निष्कलुष, अनघ, पावन, पुनीत

चित्रकार

गीतों के स्वर में भर ऐसे
तू अमर, अभंगुर, अजर रंग
घुल जायँ कि जिसमें मज्जित हो
पापों के सब पाशव कुढंग

नश्वर रंगों से वह निकले
जगती को आप्लावित करती
शिव, सुन्दर, सत्य अजस्र धार
यदि तू है युग का चित्रकार

पौरुष का गीत

क्या कहा ?—निराशा का आगे
छाया है भीषण घटाटोप !
क्या कहा ?—संकटों के तम में
पौरुष-प्रकाश का हुआ लोप !

वीरों को तो पथ में निश्चय
पीड़ा ही है पाथेय एक
साहस के सरल हास को कब
कर सकता धुँधला काल-कोप ?

आशा की बिजली बन तुम तो
नैराश्य-घटा को चलो चीर
क्या पाँव हटाओगे पीछे ?
कहता है तुमको विश्व 'वीर' !

*

ये आसमुद्र साम्राज्य नष्ट
होंगे पा एक भृकुटि-कुञ्चन
होंगे नभचुम्बी शैल एक
झटके में टूट-टूट रजकण

पौरुष का गीत

जायेगा जाने कहाँ सुखद
सपनों का यह मानव-जीवन ?
जग में यदि कुछ भी अजर-अमर
शाश्वत—तो वह है महामरण

आओ, हम सब मिल-जुल उसका
सादर अभिवन्दन करें धीर
क्या पाँव हटाओगे पीछे ?
कहता है तुमको विश्व 'वीर' !

*

भर अन्तर में भूकम्प-स्फोट,
प्राणों में घन का गर्जन-स्वर
अंधड़ का लेकर वेग बढ़ो
गिरि-सरिता का उल्लास अमर
दो तोड़ शृङ्खलायें अपनी
नैराश्य-मोह की जड़-जर्जर
नश्वर मानव, नश्वर जग में
निज लक्ष्य बना लो अविनश्वर

क्या दुर्गम वन, क्या शैल अगम
क्या रोक सकें सागर गभीर ?

क्या पाँव हटाओगे पीछे ?
कहता है तुमको विश्व 'वीर' !

*

तुम बनो न जय के अभिलाषी
तुम मत प्रकाश की करो चाह
तुम बढ़ो न छूने कभी पोत
पीड़ा का सागर पा अथाह
आँखों का एक-एक मणिकण
मत खो दो तुम कर रुदन व्यर्थ
जब मिल जायेगा लक्ष्य-ध्येय
अमृत होंगे ये आह-दाह

होंगे तब सब ये पल मंगल
मीठी होंगी सब पन्थ-पीर
क्यों पाँव हटाओगे पीछे ?
कहता है तुमको विश्व 'वीर' !

मानव

मृत्युञ्जय तुम ! तुम अविनश्वर ! अजर-अमर का फिर मरना क्या ?
महाअनल के पिण्ड स्वयम् तुम चिनगारी से फिर डरना क्या ?

*

डोल उठे ब्रह्माण्ड तुम्हारे
प्रलयंकर गर्जन-तर्जन पर
टूट गिरे छाती से टकरा
धरणी पर अडोल धरणीधर
लोह-शृङ्खलाओं में बन्दी का जीवन फिर यह भरना क्या ?
मृत्युञ्जय तुम ! तुम अविनश्वर ! अजर-अमर का फिर मरना क्या ?

*

हैं आँधी-तूफान तुम्हारी
साँसों में गति में भूकम्पन
ज्वालामुखी तुम्हारी आँखें
प्राणों में बिजली का स्पन्दन
तब कण्टक-शूलों पर चल-चल लोचन से यह जल ढरना क्या ?
मृत्युञ्जय तुम ! तुम अविनश्वर ! अजर-अमर का फिर मरना क्या ?

*

प्रलय-वीणा

क्रांति स्वयम् सहचरी तुम्हारी
प्रलय तुम्हारा है चिर-अनुचर
महामरण चलता है आगे
कर अभिवादन में विजयस्वर

तब क्षण-क्षण रोदन-क्रन्दन कर जीवन-संघर्षण करना क्या ?
मृत्युञ्जय तुम ! तुम अविनश्वर ! अजर-अमर का फिर मरना क्या ?

विजय-मुहूर्त्त तुम्हें है पल-पल
मङ्गल वनते अशुभ-अमङ्गल
विजय स्वयम् उपहार लिये ही
रहती अभिनन्दन को विह्वल

*

मंगल-तिलक भाल पर, शिर पर फिर यह आशीःस्वर धरना क्या ?
मृत्युञ्जय तुम ! तुम अविनश्वर ! अजर-अमर का फिर मरना क्या ?

राजाओं से

तुम प्रजापाल ? तुम लोकभरण ?
क्या धर्मपरायण भूप तुम्हीं ?
बोलो, बोलो विश्वम्भर के
धरणी पर प्रतिनिधि-रूप तुम्हीं ?

प्राणों के ग्राहक आज बने
तुम तो थे प्राणों के रक्षक
तुम जनपालक कल के युग के
बन गये आज जन के भक्षक

जिनके धन के बल पर तुमने
ये किये खड़े प्रासाद बड़े
सिंच-सिंचकर जिनके लोहू से
उद्यान तुम्हारे आज खड़े

जिनके हाथों पर सधे उन्हें
जर्जर करने पर आज तुले
हिंसक शस्त्रों पर तुम फूले
तुम अहंकार में आज घुले

जिनके प्रपुष्ट कन्धों पर है
साम्राज्य तुम्हारा आज टिका
उनका यश, मान, लाज सब कुछ
है आज तुम्हारे हाथ बिका

तुम आज प्रजा का रक्त-मांस
शोषण कर हृष्ट-प्रपुष्ट बने
उनके शोणित से रँगते हो
तुम अपने वैभव के सपने

बिक चुके तुम्हारे धी-विवेक
चुक-चुके तुम्हारे यश-गौरव
लुट चुका तुम्हारा स्वाभिमान
करते हो आज अनय-ताण्डव

हिंसा का दृढ़ आवरण चढ़ा
आँखों के, प्राणों के ऊपर
अपने पाँवों से कुचल रहे
तुम उनको उनकी ही भू पर

इन पापाचारों पर सत्ता के
परदे की है ओट जहाँ
है गरज रहा भीतर-भीतर
अब प्रलयंकर विस्फोट वहाँ

राजाओं से

है अन्तराल में लो, उसके
भूकम्प ले रहा अँगड़ाई !
उसके उठने की देखो तो
कैसी भयंकरी ध्वनि आयी !

छाती में जिनकी भूप आज
बर्छी-भाले तुम भोंक रहे
अपनी सत्ता की भट्टी में
इन्धन कर जिनको झोंक रहे

उन कंकालों के हाड़ों में
है अग्निशिखायें धधक रहीं
सोने के सिंहासन-नीचे
हैं ज्वालामुखियाँ भभक रही

उनकी आहों के घन तुमपर
बरसाने दौड़े आज प्रलय
आत्मा की बिजली कौंध-कौंध
करने आयी है तुमको लय

वह दीन-दलित-पीड़ित-शोषित
का युग-युग से निरुद्ध क्रन्दन
कर उठा आज है अट्टहास
फट-बिखरा अनियंत्रित शासन

सँभलो, सँभलो लपटें उनकी
आँखों में लपलप लपक रहीं
तोड़ो विलास की यह निद्रा
हो जाओ यहीं न क्षार कहीं

खोलो आँखें, देखो कड़-कड़
कर टूट पड़े बेड़ी-बन्धन
भागो, यह तुम्हें जलाने को
हो गया यहाँ प्रस्तुत इन्धन

वह छिना तुम्हारा राजदण्ड
सिंहासन डगमग डोल उठा
महलों की नींव हिलाता लो,
अब इन्क़िलाब है बोल उठा

हो गयी अहिंसा के शिर पर
हिंसा की सब धारें कुण्ठित
लो, हुआ तुम्हारे ही शिर से
गिर स्वर्ण-क्रीट वह भू-लुण्ठित

सपनों के दिन अब बीत चुके
अब अन्धड़-सा नवयुग आया
नंगों-भूखों की दाढ़ों से
ऐश्वर्य तुम्हारा टकराया

राजाओं से

है आज जागरण-शंख बजा
है शिरा-शिरा जग की स्पन्दित
देखो भूमण्डल में पल-पल
अब क्रांति-प्रलय है अभिनंदित

छोड़ो मखमल की शैय्यायें
ये मदिरा के प्याले फोड़ो
युग-युग से है बन्दी विवेक
उस कारा के ताले तोड़ो

तुम निभा न सकते ठीक इसे
दे दो जनता को यह शासन
वैभव के कीट! कहीं अपना
कर लो विस्मृति में निर्वासन

हो चुका तुम्हारा नाटक बस!
गिर जाय यवनिका अभी यहीं
तुम अपनी सुरा-सुन्दरी ले
निज नरक बसा लो और कहीं

आकर भू पर तो स्वर्ग खिले!
जग में हो जीवन का स्पन्दन
फिर से स्मशान उद्यान बनें
भव में हो दिव का अभिनन्दन

बापू

बापू! तुम हो मानव? अथवा
विभु हो विमल विभूत!
चक्रकेतु भारत के रथ के
सूत्रधार स्वर्दूत!

तुम्हारे उद्भव से धुल चले
विकल संसृति के पाप

तड़प रही थी मानवता सह
पारतन्त्र्य-अभिशाप
सिहर उठे तुम देख जगत का
परिपीड़न - सन्ताप
लेकर सत्याग्रह का अमरण
आयुध अथक अपाप!

प्राणों में भर त्याग, देह में
व्रत-चल, बुद्धि अकूत

बापू

कूद पड़े तुम कर्माङ्गण में
करमचन्द के पूत !

*

जड़-जर्जर था पड़ा सिसकता
जग - जीवन अनिमेष
सुलग रहा था मानवता में
महाअनल - सा द्वेष

हुई सहसा ही "यदा यदा हि"
गिरा क्षिति पर उद्भूत

सबसे प्रथम छुए तुमने ही
इतने कोटि अछूत !
हरिजन हुए आज तुमसे फिर
ये अन्त्यज अवधूत !
बिखरी ग्राम-शक्ति को बाँधा
कात-कातकर सूत !

आप नग्न रह-रह पहनाया
नग्नों को वर वेश !
मांसल किया लोक को बनकर
स्वयम् अस्थित्वक्शेष !

*

भरणी धरणी पर लोहित का
लखकर भीष्म विलास
घर ही के आँगन में होते
निठुर नरक का हास

पिघलकर बहा तुम्हारा प्राण
हुआ विह्वल हृद्देश

'अक्रोधेन जयेत्क्रोधम्' का
सुन अक्षर सन्देश
स्नेह-अहिंसा-शांति-सत्य का
लेकर मन्त्र अशेष
देव ! तुम्हारी ओर विश्व है
देख रहा अनिमेष

तुममें प्रकट प्रपीड़ित जग का
वह विराट उल्लास !
विश्वम्भर आत्मा का तुममें
शिव-सुन्दर आभास !!

*

अडिग तुम्हारा ध्येय, अजित बल
पौरुष - शौर्य्य अगाध

बापू

दिव्य दृष्टिमय चक्षु तुम्हारे
कर्म - पन्थ निर्बाध

अहिंसा वर्म, शांति शुचि मन्त्र,
सत्य है शाश्वत ढाल

अहो ऐन्द्रजालिक ! दिखलाकर
अपना तेज विशाल
नचा रहे हो तुम इंगित पर
पाशव बल विकराल !
मन्त्रमुग्धवत् काँप रहे ये
शासन - यन्त्र कराल

जीवन में, प्राणों में जाग्रत
आज तुम्हारी साध
आर्य ! तुम्हारे चरण-चिह्न पर
चलता चित्त अबाध

*

गाया तुमने गायक ! ऐसा
अजर - अनश्वर गीत
जन होकर तुम बने जनार्दन,
जग के गीतातीत !

मुहम्मद, गौतम, ईसा, महावीर,
मनु एकाकार !

"मानवता तो चिर-स्वतन्त्र है,
पारतन्त्र्य है भार !
स्नेह (अहिंसा) से सुरपुर है
यह वसुधा - परिवार
जन की सेवा ही जन को है
खुला स्वर्ग का द्वार !"

यही अमर सन्देश तुम्हारा
व्रत यह परम पुनीत
'नहीं अनृत की किन्तु सत्य की
सतत जगत् में जीत !'

*

साध्य सत्य को और अहिंसा
उसका साधन मान
चले लुटाने कई वार तुम
पावन अपने प्राण

खोजने, ले प्राणों का दीप,
अमरता का वरदान !

बापू

प्राणों के शोणित से धोने
जग के कलुष-विधान
संसृति को पीयूष पिलाने
कालकूट कर पान
ओ प्रलयंकर, शिव-शंकर ओ!
अभयंकर भगवान!

अमिट सत्य के अमर उपासक!
साधक, सुधी महान!
गाता पीड़ित जग का कण-कण
ऋषे! तुम्हारा गान!

*

मानवता के अमर पुजारी!
विभु की भव्य विभूति!
करुणाकर की करुणा-छाया!
करुणामय अनुभूति!

तुम्हारे उर से बहती
विश्वप्रेम-धारा अनिरुद्ध
परमहंस ओ! चरम तपस्वी!
शान्त! अश्रान्त! प्रबुद्ध!

भागीरथ! दधीचि! योगीश्वर!
शुद्ध! बुद्ध! उद्‌बुद्ध!
सत्यःसंध अजातशत्रु ओ!
विश्वमित्र अविरुद्ध!

संसृति को वरदान तुम्हारी
अच्युत! पुण्य प्रसूति
देव, तुम्हारी चरणरेणु है
भाल-भाल की भूति

*

हे विश्वम्भर के नव-वैभव!
आशुतोष! अविजेय!!
पुण्य सरस्वतियों के संगम!
करुणालय! आग्नेय !

करो भव को भवसम्भव देव!
आज दिव का वर दान
नर के वन्दनीय नारायण!
जगत-जनार्द्दन प्राण!
आत्मसत्त्व के ओ अन्वेषक!
ब्रह्माचरण-निधान!

बापू

आर्य ! संतसन्तम ! पुरुषोत्तम !

सत् शिव महा महान् !

अपरिमेय हे, अप्रमेय हे,

प्रेय, श्रेय, अज्ञेय !

जय हो, जय हो हे मृत्युञ्जय !

अनुपम, अकथ, अगेय !

किसान

तुम तपोपूत, तुम देवदूत !
तुम अघातीत, तुम पुण्यप्राण !
विभु वह तुममें अवतरित हुआ
लेकर अपना मानव महान !

करते अपने श्रम-सीकर से
तुम संसृति-हित मधु का विधान
निज रक्ताहुति देकर जग को
तुम करा रहे पीयूष-पान

जग की वर्वरता को तुमने
पहनाया संस्कृति-सुपरिधान
तुम शस्य-सृष्टि-धाता किसान !
तुम आदि-अन्नदाता किसान ।

पट से वितान निस्सीम तान
तुमने इस भव का किया त्राण
जग पर अपनी कर-छाया कर
तुम हुए स्वयम् छाया-समान

किसान

शिवि, दे-देकर अपना शरीर
तुम स्वयम् बने हो शीर्ण-क्षीण
जिससे न तुम्हें पहचान सकी
आत्मा जग की सकलुष-मलीन

लेकर आत्मा का अमृत—त्याग,
ले तप—मानवता का पराग,
शीशस्थ आग को बना फूल
खेला तुमने बलिदान-फाग

गोपाल ! तुम्हारे जीवन में
उतरा आकर विभु निर्विकार
जग पूत हुआ तुमसे पुनीत
ओ पुण्य सत्र के सूत्रधार !

हलधर ! तुमने शिर धरा अहो !
गुरुतम यह संसृतित्राण-भार
संस्कृति होती क्षुन्मग्न-नग्न
तुम बिना आज धर्मावतार !

—————

गाँवों की ओर

चलोगे उन गाँवों की ओर ?

जहाँ पर छप्पर सिर पर धरे खड़ी है मिट्टी की दीवार
कँटीले झाड़ों ही ने जहाँ बनाया है घर-घर का द्वार
इन्हीं में रहती मानव देह, इन्हीं में करता दैन्य विहार
इन्हीं के कोनों में है यहीं कहीं पड़ सो रहता परिवार
खुले रहते हैं घर दिन-रात, नहीं आते पर डाकू-चोर
चलोगे उन गाँवों की ओर ?

कहीं पेड़ों के झुरमुट-झुण्ड, कहीं लहलहा रहे हैं खेत !
कहीं पर काली मिट्टी बिछी, कहीं बिखरी है बालू-रेत !
कहीं पर ऊँचे टीले खड़े, कहीं पर सोयी है चट्टान
कहीं पर बहते नाले-नहर, कहीं है चौड़ा-सा मैदान
खुली धरती-माता की गोद, मिलेगा जिसका ओर न छोर
चलोगे उन गाँवों की ओर ?

धूल में या कीचड़ में सने खेलते गलियों में गोपाल
नहीं मञ्जन से रञ्जित आँख, कुचैले-मैले बिखरे बाल

गाँवों की ओर

देह उनकी है नंग-धड़ंग, वस्त्र उनको कहना है भूल
जीर्ण-जर्जर हो जिनका हाय, रहा हो धागा-धागा झूल

देह है नहीं, खाल में बाँध हड्डियों को है लिया बटोर
चलोगे उन गाँवों की ओर ?

जहाँ घर-घर के गोरू लिये चराते हैं हलधर के लाल
लँगोटी पहने लकुटी लिये फटे चिथड़े ओढ़े बेहाल
रँभाती गौएँ-भैंसें जहाँ, उछलते करते बछड़े खेल
इन्हीं में रहकर ये दिन-रात तीन तापों को सकते झेल

सम्पदा बने खेत-खलियान और धन इनके डंगर-ढोर
चलोगे उन गाँवों की ओर ?

जहाँ घर के कोने में नित्य किया करती है करुणा नाच
जलाती-झुलसाती है जहाँ देह को कड़ी पेट की आँच
सिमिट दुनिया भर का सन्ताप जहाँ आया है आश्रय मान
न जाने कितने दुख से दबे रहा करते हैं व्याकुल प्राण !

जहाँ पर रहती नित्य अशान्ति, क्रांति की आयी नहीं हिलोर
चलोगे उन गाँवों की ओर ?

बँधे जो परकोटों से नहीं, बेधतीं जिसे नहीं मीनार
जहाँ पर नहीं भयानक खड़े भवन-प्रासाद, दुर्ग-दीवार

नहीं माता का अञ्चल जहाँ दिया है शहतीरों ने चीर
जहाँ पर बँधे नहीं मैदान, धरा-आकाश न नीर-समीर

मोटरों-ताँगों-इक्कों-ट्राम-मिलों-रेलों का मचा न शोर
चलोगे उन गाँवों की ओर ?

बोलते बुलबुल-कोयल बोल, छेड़ते तोता-मैना तान
कबूतर, पंडुख, सारस, हंस, केलि करते गाते हैं गान
जहाँ पर बँधे नहीं हैं पंख, जहाँ संकुचित नहीं संसार
छीन पाता है मानव नहीं जहाँ पशु का आनन्द-विहार

मयूरी को करता है मुग्ध जहाँ पर नाच-नाच कर मोर
चलोगे उन गाँवों की ओर ?

कुएँ के पनघट पर लो देख जहाँ नारी का मंगल-रूप
रसभरी बातें होती जहाँ जिन्हें सुन पाता केवल कूप
शील की प्रतिमा सुषमामयी युवा-बालायें जुड़ें अनेक
कलश जिनके पानी से भरे, सदा करते रस से अभिषेक

लोचनों की कोरों से बँधी जहाँ पर प्रेम-पुलक की डोर
चलोगे उन गाँवों की ओर ?

ताज

तुम मुगल-विभव के चिर-स्मारक ! तुम नश्वरता के चित्रकार !
क्या माँग रहे हो यों अनन्त की ओर आज अंचल पसार ?
हो गये लीन उड़-उड़ अनंत में जो अतीत के स्वर्णिम क्षण
इंगित से उन्हें बुलाने फिर क्या बढ़ा रहे हो हाथ चार ?

*

रे, कहाँ गया वैभव-प्रभुत्व, वह शान, निराली चहल-पहल ?
उस अमरपुरी-सी दिव्य छटा को खो रोता सुनसान महल !
रे, नहीं समाती थी दिगन्त में जिनकी आकांक्षा अनन्त !
उन स्वर्ण-सुखों की मिट्टी पर है आज खड़ा तू ताजमहल !

*

तुम गयीं किन्तु मुमताजमहल ! अरमानों को भी गयीं पीस !
जो शाहजहाँ के बाजू में रह सदा मारती रहीं टीस !
तेरा शव-परिरंभण करने आया फिर शाहजहाँ का शव !
जब 'ताज' मिल गया मिट्टी में, तब कबतक रहता अनत शीस ?

*

थे तुमने मूँदे नयन उधर, तो इधर शीश पर गिरी गाज
सुलतान तुम्हारे जाते ही खो बैठा मानो सभी साज
तब मृदुल-मधुर आकांक्षाओं से मंजु कला का मिलन हुआ
मुमताज ! तुम्हारा मृदुल प्राण बन गया स्वयं ढल मृदुल ताज

*

तुम थीं जैसी लावण्यमयी तद्रूप तुम्हारा स्मृति-मन्दिर
रे, आज मूक हो करुण कथा कहता है उसका नग्न अजिर
ये आसमान से दुखड़ा रोती हुईं ताज की मीनारें
कर देती हैं पिघला-पिघला अब वज्र-हृदय को भी अस्थिर !

*

यद्यपि उन बातों को बीते हैं बीत चुके सैकड़ों वर्ष
हो गया शोक-सागर अथाह में लीन युगों का विपुल हर्ष
वह दुख धो-धो हलका करने आती है बह-बहकर यमुना
पर इन पावन प्राणों को वह क्या अबतक भी कर सकी स्पर्श ?

*

रे, कहाँ तुम्हारा ताज ! महल वह और कहाँ यह लघु निवास ?
वे रत्नजटित मृदु शय्यायें, यह निष्ठुर प्रस्तर में प्रवास !
सोता है वैभव यहीं कहीं, पर ताज ! तुम्हारे चरणों में,
जिसको पाने के लिए जगत् करता है जीवन-भर प्रयास।

*

ताज

वह अर्द्धनिशा का दीप्त महल, लघु भासमान जिसके समीप !
अब ज्योत्स्ना ही हरती उसका वह अंधकार, इतना प्रतीप !
नभ लज्जित था तब देख-देख जिसके महलों की दीपाली !
किरणों के आँसू रोते हैं अब देख उसे उसके प्रदीप !

*

यह निर्मल द्युति नवनीत-प्रतिम कितनी मनोज्ञ, कितनी पवित्र !
आँखों में भर इसका स्वरूप, ले इन्द्रधनुष से रँग विचित्र
वह चतुर चितेरा आता है ले-ले नव कुशल तूलिकायें
पर तुझ-जैसा अम्बर पर वह क्या अंकित भी कर सका चित्र ?

*

इन बहुरूपी मेघों से जब रँग जाता रवि प्रावृटाकाश
तब उस निशीथ के अन्धकार में ले-लेकर कर में प्रकाश !
जब तेरा ही उपमान खोजने जाती है क्षणछवि सवेग !
तो तेरी समता पा न कहीं, वह लौट-लौट जाती निराश !

*

अय मूक वेदना के चिर-कवि ! अय करुणा के संगीतकार !
क्या सुन लेगा यह मूक रुदन निर्मम-निष्ठुर यह जग असार ?
जब तेरे पत्थर छूकर ही रोता है वातावरण करुण
तुझको निहारकर रोयेंगे कितने ही कविगण कई बार !

संसार

विभ्रमों का है पारावार, मोह-माया का है आगार
रुदन-क्रन्दन का चिर-आवास, सदा संघर्षणमय संसार
यहाँ पर छिपी तृप्ति में प्यास
प्यास में तृप्ति अपार

जीवन क्या है? द्वन्द्वों का अद्भुत सम्मेलन
तन क्या है? बस आधि-व्याधि के सञ्चित अणुकण
सुख क्या है? परितोष-आवरण से आवृत सन्ताप
दुख क्या है? नैराश्य-चक्र से जग का नर्तन

यहाँ थिरकता है क्रन्दन से
मिश्रित सुख का हास!
असफलता में यहाँ सफलता
का मिलता आभास!
यहाँ है यह अद्भुत व्यापार!

❀

भ्रान्ति का भीषण झंझावात, पतन का कुलिशोपम आघात
भयंकर महानाश-सा भ्रमर यहाँ है सदा लगाता घात

संसार

निमिष में हो यह काल-कवल
भला किसको है ज्ञात ?

बहता है अविराम भ्रान्ति का यहाँ बवण्डर
वारिधि की उत्ताल थपेड़ों-सा प्रलयङ्कर
भाग्यों से लड़ते हैं जिसमें अन्धे बनकर जीव
आशा और निराशा का खाकर द्रुत चक्कर

विजय-पराजय हैं जग-पट के
दो परिमिश्रित तार
है जग का अभिशाप जिसे हम
समझ रहे उपहार !
हास है यहाँ अश्रु से स्नात !

*

यहाँ जाग्रति में पिहित प्रमाद, प्रमोदों में असीम अवसाद
यहाँ आकर फिर कोई नहीं कभी कर सका हर्ष का नाद
यहाँ मन करता नित निर्माण
कल्पना के प्रासाद

जन के मन में यहाँ भरी अतृप्त वासना
वामन की ज्यों व्योम-स्पर्श की विफल कामना
ऐसा कम्पन यहाँ हृदय में ला देता नैराश्य
हो जाता फिर अमित असम्भव धैर्य्य थामना

पग-पग पर सुन पड़ता है फिर
यहाँ व्यंग्य का घोष,
लेता शक्ति निचोड़ शौर्य्य की
तन का शोणित शोष,
सभी फिर छिप जाता आह्लाद

*

पुलक-पीड़ा, आदर-अपमान, पराजय-जय, वैभव-अवसान
जगत् में गुथे हुए हैं साथ; जाल है जग का सकल विधान
कि जिसमें पड़कर प्राण-विहंग
नहीं पाता फिर त्राण

मुसकाता जब एक दूसरा करता क्रंदन
एक भिखारी बना दूसरा लुटा रहा धन
अट्टहास के निकट यहाँ होता है हाहाकार
एक जन्मता और दूसरा मरता तत्क्षण

एक किसी का जीवन है तो
वही किसी का काल
जन की आँख लुभा लेता यह
भले-बुरे का जाल
नहीं रहता विवेक में प्राण

*

संसार

आज जो शैशव कल कौमार्य, जरा-यौवन भी हैं दुर्वार्य्य
अरे, यह बहुरूपी संसार, यहाँ है परिवर्तन अनिवार्य्य
बदलता रहता अगणित रूप
हमारा पथ निर्धार्य्य !

जो इस पल सुख-मग्न वही पीड़ित अगले पल
आज धनद, कौड़ी-कौड़ी को तरस रहा कल
आज प्रेयसी से मिल कोई करता सुखद विहार
पर कृश है वह कल वियोग की ज्वाला में जल

जो 'कल' था वह 'आज' हुआ
'कल' होगा जो है 'आज'
रहते हैं कल-आज पर न
'कल' और 'आज' का राज
जाल यह जग का निष्परिहार्य्य !

*

आज का सुमन अरे, कल धूल; अचिरता एक जगत् का मूल
यहाँ लहराता सदा अशान्त, अशाश्वतता का अब्धि अकूल
और जन होकर पोत-विहीन
ढूँढने जाता कूल !

उसकी लहरों में पड़कर बहता है मानव
जड़ता-रत जन का जिससे उद्धार असम्भव

मिल जाता पर जिसे धैर्य्य के तिनके का अवलम्ब
वह न भ्रमर में पड़कर करता नर्तन ताण्डव

भ्रान्ति-त्रस्त को सुख भी चुभते
बनकर दुख विकराल
डस लेती उसको वेणी भी
बनकर भीषण व्याल!
फूल चुभते हैं बन-बन शूल!

*

"जिसे मैं पुकारता हूँ 'राम' उसे दे वह 'रहीम' का नाम ?"
इसी पर तो विवाद-विभ्राट मचा करते जग में अविराम!
शान्त होता प्राणों का रक्त
चूस यह अनलोद्दाम!

निर्बल को हैं पीस डालते यहाँ सबल जन
कुछ रजकण पर छिड़ जाता है यहाँ घोर रण
जलता है सबके अन्तर में द्वेषानल विकराल
जिसमें प्रतिक्षण जलते मानव-मन दानव बन

वैमनस्य, प्रतिशोध, असूया
का जग चिर-अधिवास,
जग में शान्ति खोजने का जन

संसार

करते व्यर्थ प्रयास,
नींद में भी न यहाँ विश्राम।

*

पुण्य करते पर होता पाप! माँगते वर हम मिलता शाप!
बनाते हैं पर मिटते काम! चाहते सुख मिलता है ताप!
और फिर मिल जाता साफल्य
यहाँ पर अपने आप!

करते रहते प्राण यहाँ जीवन का अभिनय
क्षण-प्रतिक्षण होते जाते फिर वे मृति में लय
उदय और क्षय, पुनः उदय-क्षय, यही उदय-क्षय-चक्र
चलता जाता अबाध अनवच्छिन्न-वेग-मय!

जन्म-मरण की आँख-मिचौनी
में जग रत निर्बाध
अनियम जग के नियम, न इसमें
अदृष्ट का अपराध
व्यर्थ है व्यर्थ यहाँ परिताप

क्रान्ति का आमन्त्रण

[कवि प्रेयसी के प्रति]

आग लगी है, आग लगी है, धधक रहीं लपटें धू-धूकर
झुलस रही जिसमें मानवता, चिता जल रही भीम-भयंकर
बचे रहें लपटों से कैसे हमने जग से जोड़ा नाता
नहीं नरक-ज्वाला में जलने यहाँ स्वर्ग का वैभव आता

*

यहाँ न शैशव की कल-क्रीड़ा, बाल-काल की वे सुख-स्मृतियाँ
अरी कल्पने! यहाँ कहाँ हैं यौवन की उन्मद रँगरलियाँ?
अरमानों के इस मरघट में वह मधुमय रसधार कहाँ है?
प्रिये, छिन्न जीवन-तंत्री में अमरण की झंकार कहाँ है?

*

नग्न, क्षुधित, पीड़ित है जगती विपुल वसन-धन-धान्य भरा है
जिनका नित्य अभाव यहाँ है उनपर तृष्णा का पहरा है
इस जग का स्वरूप देखो तो, तुम पीड़ा से सिहर उठोगी
यह आडम्बर-जाल जलाने लपटों का शृंगार करोगी

*

क्रान्ति का आमन्त्रण

धनिकों का वैभव करता है दीनों की छाती पर ताण्डव
दुर्बल की पीड़ा पर होता अट्टहास सबलों का भैरव
मूर्तिमान श्रम बने रात-दिन पल-पल उनका शोषण-पीड़न
किन्तु अकर्मण्यों के घर में पल-पल विपुल बरसता कञ्चन

*

ये समाज के प्राण खेतिहर, ये मजूर सुख-सिरजनहारे
आज बने हैं नग्न-निराशन, तड़प रहे दुर्दिन के मारे
इस हलचल में कौन यहाँ है मूक रुदन को सुननेवाला ?
प्रिये, अक्लमन्दों के मुँह पर आज पड़ा जकड़ा है ताला !

*

यह किसान देखो, हल धरकर बैल लिये खेतों को भागा
दिन भर तपा आग के नीचे साँस न पर ले सका अभागा
रात और दिन जाग-जागकर की अपने धन की रखवाली
तप की कठिन साधना करके देह अस्थिपंजर कर डाली !

*

पर यह क्या ? किसके घर पर सब धान गाड़ियों में लद आया ?
किसने प्रिये, अन्न उपजाया, कौन अन्नदाता कहलाया !
रे, यह कैसी अर्थ-व्यवस्था ? यह कैसा साझा-बटवारा ?
उपजानेवाला ही भूखा, नंगा, बेकस रहा बिचारा !

*

लाता है पैसे को पैसा—यही आज का नियम बना है
यह पैसा तो उन दीनों के शोणित से क्या नहीं सना है?
अर्थशास्त्र कहता इसको जग, जो है प्रिये, अनर्थ-विधाता!
यह कैसा मंगल-विधान है, जो नित नया अमंगल ढाता?

*

देखो तो इस आसमान को कितना हुआ धुएँ से काला!
आसमान ही नहीं, मिलों ने विधि-विधान काला कर डाला!
इन्हीं दानवों के गर्जन में छिपी पीड़ितों की चीत्कारें
आर्तवाणियाँ माँ-बहनों की, उन भूखों की करुण पुकारें

*

इनमें इतना कपड़ा बुनता यह दुनिया सारी ढक जाये!
फिर भी उसे बनानेवाले अपनी देह नहीं ढक पाये!
वैभव के दाँतों में पिसते पल-पल उसे तरसनेवाले!
पर प्रिय, उनको देख-देख हैं किसके नयन बरसनेवाले?

*

एक ओर समृद्धि थिरकती, पास सिसकती है कंगाली
एक देह पर एक न चिथड़ा, एक स्वर्ण के गहनोंवाली
उधर खड़े हैं रम्य महल वे आसमान को छूनेवाले
और बगल में बनी झोपड़ी जिसके छप्पर चूनेवाले

*

क्रान्ति का आमन्त्रण

यहाँ कड़ाके का जाड़ा है नरम-गरम उनके कमरे हैं
इनके घर है एक न चिथड़ा, गद्दे-तकिये वहाँ धरे हैं
गरमी में उशीर के चिक हैं, ठण्डे-ठण्डे फ़व्वारे हैं!
'शिमला' उनके कमरों में है, 'आबू' उनके तिद्वारे हैं!

❀

और इधर ये उस धरती पर जो भट्टी-सी आग उगलती
लून सुखानेवाली भीषण चारों ओर लपट है चलती
जुटे काम में खुले वदन ही खेतों में या खलिहानों में
जाते हैं वे ढोर चराने अपने घोर वियाबानों में

❀

टप-टप-टप गिर रहा पसीना, पर वे काट रहे हैं लकड़ी
उनकी ये पेशियाँ पेट की कड़ी साँकलों से हैं जकड़ी
'रिमझिम'-'रिमझिम' वरस रहा है आसमान महलों के ऊपर
झोपड़ियों में किन्तु वची है पग धरने को भूमि न तिल भर

❀

गरज रहा है वादल ऊपर, चारों ओर लपकता कौंधा
मूसलधार वरसता पानी मानो सागर ऊपर औंधा
महल वनानेवाले रानी! जीवन भर धरती पर लेटें!
उनकी अर्द्धांगिनियाँ अपने तन में अपनी लाज समेटें!

❀

उधर बगीचों में, बागों में वहाँ मजलिसें जमी हुई हैं
रूप-रंग-यौवन पर उन्मद आँखें सबकी थमी हुई हैं
बुलबुल चहक रही डालों पर, कोयल कुहुक रही पातों में
दिन में उनके स्वर्ण बरसता, रूप बरसता है रातों में

*

एक ओर हँस रहे फूल हैं, पत्ती-पत्ती फूल रही है
कली-कली मदभरी गर्व में इठलाती-सी झूल रही है
राग-रंग है, गान-वाद्य है, मधुर-मधुर गायन रसभीना
हावों-भावों भरी मनोरम नृत्य कर रही गान-प्रवीणा

*

दौर चल रहे हैं प्यालों के, नूपुर रुनझुन झनक रहे हैं
झूम रहे हैं पीनेवाले, सोना-चाँदी खनक रहे हैं
ऐसा जान पड़ रहा मानो जन्नत यहीं उतर आया हो
हूर और गिलमों का जमघट, ठाठ-बाट अपना लाया हो

*

घास-फूस की झीनी-जर्जर झोपड़ियों की पर यह बस्ती!
बड़े-बड़े महलों के आगे इन बेचारों की क्या हस्ती?
यहीं छिपी इन झोपड़ियों में वैभव से डरकर कंगाली
विविध-विभववाली दुनिया की यह भी है तस्वीर निराली

*

इनमें कब रहते मनुष्य हैं ? पर मनुष्य इनको जग कहता !
जीने ही के लिए जगत् में प्राण पंजरों में टिक रहता !
इस जगती के रंगमंच पर कहीं झोपड़ी, कहीं महल है
कहीं रुदन-क्रन्दन होता है, छाया कहीं मोद-मंगल है

*

बड़ी कड़ी है, विषम बड़ी है जग में यही पेट की ज्वाला
अरे, पेट ही की ज्वाला ने नर को है नंगा कर डाला
खौल-खौल उठता है लोहू ! देख-देख दीनों का क्रन्दन
भड़काता है आग हृदय में दीनों का शोषण-उत्पीड़न

[उत्तरार्द्ध]

प्रिय, तुम तो पर देह-कलश में छलक रहा यौवन लायी हो !
कितनी मधुर कामनाओं से भरा हुआ तन-मन लायी हो !
तुम मेरे इस जीवन-वन में कोयल-सी बनकर आयी हो !
भड़का है दावानल जिसमें उसमें करने घर आयी हो !

*

ले अपना मधु-कलश झूमती आयी हो साकी-बाला-सी
बढ़ा रही हो इधर भुजाएँ अपनी ये मृणाल-माला-सी
लोरी सुनती हुई जगत के रोदन-क्रन्दन में आयी हो !
स्वर्गिक सुख के झूलों पर से झंझानर्तन में आयी हो !

*

फूल तुम्हारे अंग-अंग में रोम-रोम में आग यहाँ है!
तुम बुलबुल - सी जिसमें चहको हरा-भरा वह बाग कहाँ है?
सोचो मत—'यदि एक बार मैं पञ्चम स्वर में कुहुक उठूँगी
रूखा-सूखा यह उपवन तो पल भर में पल्लवित करूँगी'

*

अरे, यहाँ जल रही भयानक विद्रोहों की ज्वाला भीतर
झुलस उठेगी यह कोमलता, यह मोहकता जिसको छूकर
सुख-सपनों में तुम भूली हो, यहाँ वेदना का लेखा है!
आग और फूलों का रानी! साथ कभी होते देखा है?

*

या तो आग फूल बन जाये या फिर फूल निगल ले ज्वाला
भरा हुआ है यहाँ हलाहल अमृत को पीजानेवाला
प्रिये, आग की इस भट्टी में कौन फूल बचनेवाला है?
एक-एक आ-आकर इसमें चिनगारी रचनेवाला है!

*

आओ, तुम भी इस ज्वाला में ज्वालावरण पहनकर आओ
ये अंगारे निगल-निगलकर ज्वालामुखी आज बन जाओ
केशपाश अपने बिखरा दो बन जाओ तुम आज भवानी
क्रान्ति-क्रीट-धारिणी प्रणय के बन्धन तोड़ फेंक दो रानी!

*

क्रान्ति का आमन्त्रण

चलो, कठिन कञ्चुकी बाँधकर साड़ी आज प्रलय की पहने
जंजीरों की याद दिलानेवाले ये गहने दो रहने
अपनी ये चूड़ियाँ बजाकर विद्रोही स्वर आज जगा दो
विश्व-वेदना की होली में अपना सब सुख-साज लगा दो

※

आज लगा लो निज ललाट पर संचित बलिदानों का टीका
माथे की बिन्दी से प्रकटे ज्वाला-जलित तेज रमणी का
चलो, क्रान्ति का जीवन भर दें इन युग-जर्जर कंकालों में
चलो, सुखों की साध जगा दें फिर इन नंगों-कंगालों में

※

धू-धू कर तुम बढ़ो लपट-सी कम्पित करतीं यह आडम्बर
झंझानिल बन उड़ूँ साथ में मैं धूमिल कर दूँ यह अम्बर
धनी जनों का खोटा सोना चलो गलाकर साथ बहा लें
फैला है जो कालकूट यह अमरण बन उसको पी डालें

※

तीव्र स्वरों में जयगर्जन ले, वज्र-वेग लेकर पाणी में
परिवर्तन का महागीत ले अपनी प्रलयंकर वाणी में
वन्य वह्नि-सी बढ़ो प्रिये, तुम जग का कल्मष-जाल जलाती
प्रलय-बाढ़-सी बढ़ो युगों के बाधा-बन्धन तोड़ ढहाती

※

सुप्त श्मशानों में थिरको तुम चण्डी-सी नूपुर झंकृत कर
पुनर्जागरण का नाटक हो वसुन्धरा के रंगमंच पर
रोम-रोम में जगे साधना विष को अमृत कर देने की
कालरात्रि के अन्धकार में दिव्य ज्योति फिर भर देने की

*

इस शृङ्खलामयी दुनिया में जन-जन विद्रोही बन जाये
क्रांति-गीत की महा-प्रतिध्वनि अवनी-अम्बर आज गुँजाये
आज क्रान्ति का आमन्त्रण है, चलो क्रान्ति के हों दीवाने
चलो क्रान्ति के महायज्ञ में मंगल आहुतियाँ बन जाने

ज्वाला

आज प्राण ! वीणा में मेरी
जाग उठी भीषण ज्वाला

*

आती अब कब उषा-अंगना भर अनुरागभरी लाली ?
अब सन्ध्या-सुन्दरी न लाती अपनी जगमग दीपाली !
व्याल बनी फुफकार उठी हैं रजनी की अलकें काली !

पहनाती कल्पना-प्रेयसी
मुझको अब न सुमन-माला
आज प्राण ! वीणा में मेरी जाग उठी भीषण ज्वाला

*

जलती हैं क्यों अग्नि-शिखा-सी ये कलियाँ कोमल-कोमल ?
आज विषबुझा बाण बना है यह मादक मलयज परिमल !
आज चिता-सी धधक उठी है क्यों उर की ज्योत्स्ना शीतल ?

कौन मुझे पहना जाता है
आज प्रलय-लपटें ला-ला ?

प्रलय-वीणा

आज प्राण ! वीणा में मेरी जाग उठी भीषण ज्वाला

*

आज मुरलिका का मधु स्वर भी मरण-राग सुन-सुन सिहरा !
रस की इस लघु गागर में है आज गरल-सागर लहरा !
कौन रहा मेरे गायन के स्वर में ये स्फुलिंग बिखरा ?

आज अनल-रागिनी लिये है
धधक उठी कविता-बाला
आज प्राण ! वीणा में मेरी जाग उठी भीषण ज्वाला

*

आज ज्वलित हो उठी अचानक जड़ित देह की यह कारा
आज श्वास-तारों में गूँजी प्रखर प्रलय की स्वर-धारा
शिरा-शिरा में मचल उठी है मेरे आज सर्वहारा

गला-गला जिसने प्राणों को
अजर अमरता में ढाला
आज प्राण ! वीणा में मेरी जाग उठी भीषण ज्वाला

यात्रा

मैं चला यहाँ से एकाकी तन पर अमरण आभास लिये
मुख पर स्वर्गिक उल्लास लिये, नयनों में निर्मल हास लिये
दृग में छवि थी यह भूल रही, श्रवणों में स्वर था गूँज रहा
मैं खिल-खिल उठता था शिशु-सा अंगों में केलि-विलास लिये

*

मैं अपरिचितों के उपवन में जिस निमिष मुकुल-सा फूट पड़ा,
किसकी छाती से अधरों में अमृत का झरना छूट पड़ा!
मैं अब न वहाँ पर अतिथि रहा, बन गये सभी परजन परिजन
युग-युग से बिछुड़ा क्या मेरा परिवार धरा पर टूट पड़ा!

*

मैं सरल-सलील, चपल-चंचल कितने ही हाथों पर घूमा
मुझ धूलभरे हीरे का मुख कितनों ही ने सुख से चूमा
मेरी लीलाओं में पाया कितनों ही ने मधु आकर्षण
मुझपर कोई बलिहार हुआ, फूला न समा कोई झूमा

*

साथी-संगी सब ले-लेकर रस-रंग किये मैंने अपने
बालू में सृष्टि रची अपनी, मिट्टी में सत्य किये सपने
मैं कभी हँसा खिलखिला कभी नाचा भर-भरकर किलकारी
रिमझिम ने मुझको दी करुणा बल-ओज दिया सूर्यातप ने

*

सावन आया जब आँगन में मैंने तरु पर झूला झूला
जब इन्द्र-धनुष नभ में फूला तो मैं अपने मन में फूला
सुमनों से सज-धज चमक-दमक जाती जब-जब चपला-बाला
तब-तब मनमोहन देख छटा मैं मग्न बना सुध-बुध भूला

*

आये मंगल-त्यौहार कई, मेरे सजधज के वेश सजे
माथे पर तिलक लगा मेरे, फूलों से कुंचित केश सजे
मेरे आँगन में एक साथ नाचीं छमछम सुरबालायें
वह छवि देखी, वह राग सुना, जिससे कि यहाँ की स्मृति उपजे

*

आयी जब होली-दीवाली मैं फूल उठा उल्लास लिये
आयी राखी तो 'बहनों' ने सजधज अपने शृङ्गार किये
राखी को बाँध कलाई पर माथे पर धर अक्षत-रोली
बोली मन ही मन में बहना—'जुग-जुग यह मेरा वीर जिये!'

*

यात्रा

धीरे-धीरे क्षण बीत चले झलकी इन अंगों में लाली
छलकी अपनी मादकता से अनजाने यह जीवन-प्याली
जो तृप्ति नहीं अपनी पाती ऐसी पल-पल पर प्यास जगी
उन अनजानों से मोह लगा मैंने मन में पीड़ा पा ली

*

मै चलता था कितनों ही के नयनों की प्यास बुझाता-सा!
कितने ही आकुल प्राणों पर पल-पल अमृत बरसाता-सा!
बस गयी न जाने कब मेरे नयनों में मनमोहन आभा
जुड़ गया आप ही आप न जाने क्यों हृदयों में नाता-सा?

*

अमरण वीणा की झंकृति से हो गया हृदय यह मुखरित-सा
हो गया और अन्तर मेरा नव आभा से आलोकित-सा
जब एक सुनहला दिन आया, जो मणि-माणिक के क्षण लाया
अनजाने एक निमिष पाया, मैंने यह प्राण समर्पित-सा

*

भर गयी नयन में बिजली-सी सुलगी प्राणों में जब ज्वाला
कितने ही हार चढ़े मुझपर, कितनी मैंने पहनीं माला
मेरे मानस का हंस बना यौवन करता था रँगरलियाँ
कोई इन तन-मन-प्राणों पर नित ढाल रहा था गुल्लाला

*

मेरी कठोर यह वज्रदेह बिंध गयी कुसुम के तीरों में
मेरे जीवन का अमृत सब बस गया कनी बन हीरों में
मेरे बल का सागर उमड़ा पीने को जब रस की गागर
अमरण वन्दी बन गया जकड़ पड़कर मृण्मय प्राचीरों में

*

मैंने भ्रू अपना वंक किया नभ में ऊपर बिजली कड़की
मैंने आँखें जब दीं तरेर हिम में भीषण ज्वाला भड़की
मैंने स्वर में हुंकार भरा भय से सातों सागर लरजे
मैंने अपना पद-चाप किया धरणीधर की नस-नस तड़की

*

मैं चला और आगे-आगे चल पड़ी विजय अभिनन्दन में
मेरे तन की छवि को निहार फूलीं कलियाँ वन-उपवन में
मेरी स्मिति का चुम्बन पा-पा इठला-इठलाकर फूल खिले
मुझको निहार तरु-वल्लरियाँ बँध गये गाढ़ आलिंगन में

*

मेरे यौवन की उड़ती थीं जब वैजयन्तियाँ फहर-फहर
स्वागत करती थीं फूल खिला कितनी वल्लरियाँ छहर-छहर
कितने ही सुमन निछावर थे, अर्पित कितने ही मणि-माणिक
करते थे जब अभिषिक्त मुझे बरबस रस के सर लहर-लहर

*

यात्रा

मै चलता था तो विजय-घोष करता था नभ में वज्र गरज
उड़ती थी चारों ओर सुरभि मेरी, बिखेरती थी मलयज
मेरे प्राणों की सुषमा ले उद्यान सभी लहराते थे
मेरी निगाह पाकर निहाल होती थी वसुधा की सजधज

*

तन-मन यह मेरा रंगस्थल बन गया अमित आशाओं का
जीवन मेरा यह चित्र-पटल बन गया विपुल वाञ्छाओं का
जागे आशा-भय, हास-रुदन, जय-अविजय के स्वर वीणा में
मेरे प्राणों का घट संगम बन गया विविध धाराओं का

*

छा गया चतुर्दिक समारोह पहुँचा था एकाकी-अवसंन
मैं तन्तुवाय बन गया और सब ओर गया जाला-सा तन
था उलझ-उलझ जाता उसमें जब मैं सुलझाता था उलझन
मैं तोड़ नहीं पाया बनकर निर्मम जग के कोमल बन्धन

× × ×

जब बीत चुका रस-रसकर सब पथ में मेरे घट का जीवन
पाथेय न कोई शेष रहा बैठा मै म्लानमना-उन्मन
थक गयी देह, मैं शिथिल बना, निद्रा में हुआ अचेतन-सा
आँखें खोलीं, पाया मैंने यह प्राण ! तुम्हारा आलिंगन

नारी

देवि, या तुम मानवी ! तुम कौन ?
शक्ति तुम मायाविनी-सी मौन !
तुम धरा पर आदि से उद्भूत !
सृष्टि में तप-पूत ! दिव-सम्भूत !

जब सुभग सृष्टि का सर्वप्रथम था उदित हुआ पावन प्रभात
जब भासमान की प्रथम रश्मि आयी थी लेकर रंग सात
जब थिरक रहे थे सुषमा का चुम्बन पाकर किसलय कोमल
जब उलझ उषा की अलकों से था केलि कर रहा मलय-वात
ऊषा से तरुण अरुण आभा ले वालारुण से अरुण रंग
कर गया सृजन वल्लरी-प्रतिम तव देह तुम्हारी आ अनंग
रचकर मृणाल से बाहु युगल कर में धरकर दो अमल कमल
लहरों-सा लहरा गया ललित लावण्य चूमकर अंग-अंग

तुम धनुर्शरधारिणी निष्णात !
किन्तु तुमसे परुपतर जलजात !
बेधती तुम वज्र भी विकराल
सबल भी अबले ! हुआ नतमाल

नारी

विधु ने था रचित किया आनन   तारक ने लोचन खचित लोल
अप्सरियों ने थे अधर रचे   सुरतरु के ले पल्लव अमोल
भर गयी राग मृदु, मंजु, मधुर   वाणी में कलकण्ठा कोयल
आ अंग-अंग में छवि भर दी   तव अनंगांगना ने अतोल
फूलों की कल कोमलता ले   आया घुँघराला स्वयम् शेष
रजनी की लेकर कृष्ण कांति   रच गया ललित ये कलित केश
वीणापाणी की अँगुली से   जब बजी अमर-वीणा अविरल
भर गयी तुम्हारी कृति-कृति में   झंकृति उसकी कविता अशेष

ब्रह्म की करुणा तुम्ही अविकार
प्रेम की कविता तुम्ही साकार
प्रणय की प्रतिमा तुम्ही प्रतिभात
स्नेह की अमरण विभा अवदात

बन गयी रूप धर वसुन्धरा   करुणामय की करुणा महान
तब तुममें सहसा निखर पड़ा   ममता से भी अति मृदुल प्राण
जब प्रकृति और परमेश्वर का   अनुराग विरह में उठा पिघल
ढल-ढलकर पावन तन-मन में   हो गया प्रेम में मूर्त्तिमान
जब थी वसुन्धरा नव, नवीन   स्वर्णाभा में कर रही स्नान
माधव अनुरागी ने तुमको   तब दिया प्रणयमय पुण्य प्राण
जब सुधा-सिक्त पञ्चम स्वर में   पिक गीत गा रहा था मंगल
आकर तब तुमको विश्वम्भर   कर गया अमृत के कुम्भ दान

पुरुष यदि तुमसे अमृत पाता न
तो न कर पाता हलाहल पान
प्रेम में हो आज पुरुष विभोर
बन सका है वीर, वज्र-कठोर

संसृति की सब संचित सुषमा खिल उठी अधर पर लिये हास
साकार स्वर्ग की सुन्दरता बन गयी ललित लीला-विलास
भव का वैभव, दिव का दर्शन तुममें है संगम-सा निर्मल
तुम आत्मा का आभास अमल, तुम प्राणों का अमरण विभास
जननी-सी तुम कारुण्यमयी वात्सल्य-स्नेह से ओतप्रोत
तुम सखी-सहचरी बन नर की खेती हो उसका प्राण-पोत
तुम रखतीं नित्य उसे गतिमय अपने अमृत का दे सम्बल
तुम करतीं अविरल प्रवहमान जग-जीवन का यह पुण्य स्रोत

ज्ञानियों की तुम अकथ-अज्ञेय!
गायकों की अगम और अगेय!
प्रेय नर, तुम प्रेयसी परिणेय!
पुरुष की आराध्य तुम अविजेय!

राजसूय यज्ञ

राजसूय यह यज्ञ विभीषण !
संसृति के विशाल मण्डप में यह भीषण विराट आयोजन !

समिधि बने हैं आज राष्ट्र ये हिंसा का जल रहा हुताशन !
वसुन्धरा की महावेदिका धधक उठी है हवन-कुण्ड बन !

पहन प्रौढ़ दुर्भेद्य लौह के वसन रक्तरञ्जित दानवगण !
मानव के शोणित का घृत ले नरमुण्डों के ले अक्षतकण !

विध्वंसों पर अट्टहास भर-भर कर-कर स्वाहा-उच्चारण !
होम कर रहे लक्ष करों में लिये श्रुवा शस्त्रों के भीषण !

करता है साम्राज्यवाद का विजयघोष अम्बर में गर्जन !
तुमुल-नादकारी विस्फोटक करते साम-मन्त्र का गायन !

आग्नेयों का धूम-पूञ्ज कर रहा निरन्तर गगन-विकम्पन !
अवभृत इन्हें कराने आये क्यों न प्रलय ही सिन्धु-लहर बन ?

राजसूय यह यज्ञ विभीषण !

मुरली

एक निमिष यदि इस मुरली में तुम मधु स्वर भर दो मुरलीधर !
नाच उठें तो इसकी ध्वनि सुन वृहद् भूमिधर, विराट सागर !

ये तरु-वल्लरियों के पल्लव
नभ-नक्षत्र, हिमांशु-प्रभाकर
ये दिङ्नाग, शेष, धरणीधर,
ये अणु ये परमाणु, चराचर

गायें सब मिलकर स्वरैक्य से अमर प्रेम-संगीत निरन्तर !
एक निमिष यदि इस मुरली में तुम मधु स्वर भर दो मुरलीधर !

*

अमर गीत के छू-छूकर स्वर
गिरें शृङ्खलायें झड़ जर्जर
तोमर-शल-असि-तोप-धनुर्शर
से चू पड़ें सुधा के सीकर

हिंसक पशुओं के भी उर से फूट पड़े करुणा का निर्झर !
एक निमिष यदि इस मुरली में तुम मधु स्वर भर दो मुरलीधर !

*

मुरली

वह-वह अजर-अजस्र सुधा-स्वर
अमर करे रसना को छूकर
फूट पड़े मानस-मानस से
मानवता का गीत अनश्वर

मूर्तिमान हो जग-जीवन में मंगलमूल सत्य, शिव, सुन्दर!
एक निमिष यदि इस मुरली में तुम मधु स्वर भर दो मुरलीधर!

मंगल-पाठ

अमृतमय ! अपने अमृत का दो जगत् को एक सीकर
आज जग पी-पी हलाहल
हो रहा विभ्रमित-विह्वल
जा रहा दिग्भ्रान्त हो
अमरण मरण की ओर पल-पल
आज प्राण-प्रदीप जल-जल
उगलता है कलुष-कज्जल
ढक रही जिससे मनुज की
दिव्यता अकलङ्क-उज्वल

स्नेहमय ! निज स्नेह से दो जगत् के रूखे नयन भर
अमृतमय ! अपने अमृत का दो जगत् को एक सीकर

*

है गरजता काल-बादल
है बरसता नाश अविरल
छा रहा विस्फोटकों का
रे, तुमुल निर्घोष अविकल

मंगल पाठ

रक्त-रञ्जित आज भूतल
धूम्र-ध्वंसित व्योम-अञ्चल
विश्व-आँगन में मचा है
आज कोलाहल असंगल

शान्तिमय ! छू दो करों से आज अक्षर शान्ति-निर्झर
अमृतमय ! अपने अमृत का दो जगत् को एक सीकर

*

आज है जड़ता अनर्गल
श्वास जर्जर, चित्त चञ्चल
आज आत्मन् है विमूर्च्छित
प्राण - पन्थी है असम्बल
आज संसृति क्षीण-निर्बल
आज संस्कृति जड़ित-निष्फल
विश्ववीणा के सुधास्वर
तार आज हुए विश्रृङ्खल

प्रलय से अपने अनुप्राणित करो यह सृष्टि जर्जर
अमृतमय ! अपने अमृत का दो जगत् को एक सीकर

जागरण

आज मेरी चेतना का जागरण है!

आज मेरे बन्धनों की
गिर पड़ी हैं लौह-कड़ियाँ
आज मेरे लोचनों की
चुक चुकी हैं अश्रु-लड़ियाँ

आज तन के रोम में
उल्लास ही उल्लास छाया
ले रही हैं अब विदाई
वेदना की विकल घड़ियाँ

क्षितिज पर अमरत्व की आशामयी स्वर्णिम किरण है!
आज मेरी चेतना का जागरण है!

*

मोह! तुम जाओ यहाँ से
अब न मेरे पास आना
ओ विकलते! पाश तू
इस ओर अपना मत बढ़ाना

जागरण

रुदन मेरे ! छिन्न होकर
हास बन जाओ अधर पर
भग्न होकर तू तिमिर !
आलोक में अब डूब जाना

आज मेरे गेह सुन्दर-सत्य-शिव का आगमन है!
आज मेरी चेतना का जागरण है!

*

आज अपने चित्त में
धी-दीप मैंने है जगाया
आज मानस का सुभग
शृङ्गार जाग्रति से सजाया

देह का यह गेह मेरा
आज देवालय बनेगा
आज मैंने प्राण में
उत्सर्ग का आसन जमाया

आज मेरे रोम का प्रति शूल स्वागत में सुमन है!
आज मेरी चेतना का जागरण है!

मिलन-पर्व

मिल रहा अमरत्व में है आज मृण्मय प्राण मेरा

*

आज मधुमय श्वास पाकर वेणु तन की बज उठी है!
नेत्र-चित्राधार, बरुनी-तूलिका भी सज उठी है!
स्नेह के नव रंग ले उर आज बन आया चितेरा

*

आज ज्योत्स्ना-सी वदन पर रूप-आभा छा रही है
हृदय-स्पन्दन में मिला लय गीत वीणा गा रही है
आज अणु-अणु सृष्टि का है कर रहा सम्मान मेरा

*

देवदुर्लभ भी सुलभ कर स्वर्ग की निधि आज तुमने
प्रिय, अकिंचन को दिया कर से अकंटक राज तुमने
आ नियति-वत् प्राण ! तुमने स्वर्ण जीवन में बिखेरा

*

रोम-तारों से अचानक आज शुचि उल्लास फूटा
आज तन, मन, प्राण ने चिरकाम्य मिलन-विलास लूटा
प्राण ! अमृत से किया तुमने अमर-अभिधान मेरा

*

आज क्यों नश्वर जगत् में दीप्त शाश्वत कांति-सी है?
आज नभ में झिलमिलाती मोतियों की पाँति-सी है!
लय हुआ उल्लास में संसृति विकल संगीत तेरा

———

प्रबोध

तन-मन की इन रँगरलियों में चिर-जीवन का ध्येय न भूलो !
जग-जीवन की इन अलियों में नित्य-चिरन्तन श्रेय न भूलो !

❋

अपने पावन प्राण-कलश को
मन-मन के मधु अमृत से भर
अविनश्वर के पूजार्चन में
धर दो उसको प्रेम-पुरस्सर

अजर-अमर के आराधक तुम, जड़ प्रतिमा के चरण न छू लो !
गायक ! गीत-स्वराराधन में आदि-अनश्वर गेय न भूलो !

❋

अपने मृण्मय अधर छुओ मत
करो न वह पीयूष हलाहल
झरने दो निर्झर वह अविरल
बनने दो प्राणों को निर्मल

कोमल स्वप्न-हिंडोलों पर हे अमर सत्य के स्तम्भ, न भूलो !
अपने प्राण-समर्पण में तुम जीवनधन का देय न भूलो !

❋

कज्जलमयी प्रणय की लौ से
सके विलोचन-दीप नहीं जग
अकलुप-अमल प्रेम-ज्वाला से
होने दो अन्तरतम जगमग

स्वर्ण-वर्ण भंगुर काया में पा प्रियतम की झलक न फूलो!
प्रेयस् के इस आकर्षण में सत-शिव-सुन्दर श्रेय न भूलो!
तन-मन की इन रँगरलियों में चिर-जीवन का ध्येय न भूलो!
जग-जीवन की इन अलियों में नित्य-चिरन्तन प्रेय न भूलो!

अनुरोध

तुम हो मेरे ध्येय मनोरम ! तुम मेरा मत ध्यान करो
अपने अमरण प्राण मुझे दे मृण्मय का मत मान करो

मैं तुमको मिलने को पल-पल
रहता हूँ अति व्याकुल-विह्वल

तुम निज को खोकर न जगत् में मेरा अनुसन्धान करो
तुम हो मेरे ध्येय मनोरम ! तुम मेरे मत ध्यान करो

इस भंगुर घट से यों क्षण-क्षण
बहने दो न अमर यह जीवन

मुरली के रन्ध्रों से बहता यह अमृत-रस पान करो
तुम हो मेरे ध्येय मनोरम ! तुम मेरा मत ध्यान करो

जग के पाशों में छिप अविरत
मैं होता जाता छायावत्

तुम अपनी आलोक-किरण दे ज्योतिर्मय ये प्राण करो
तुम हो मेरे ध्येय मनोरम ! तुम मेरा मत ध्यान करो

संगीतकार

तुम प्रतिपल गाते जाते हो !
मेरे प्राणों के तार-तार निज श्वासों से झनकाते हो !!

स्वर मेरे जिनमें ताल न लय
है छन्द इन्हें कहना अविनय
इन अस्फुट शब्दों के मधुमय तुम गीत बनाते जाते हो !!

वाणी तो यह मेरी नीरस
पर तुम रस भर देते बरबस
अपना मधु उसमें परस-परस उसको मधुराते जाते हो !!

वीणा है यह मेरी जर्जर
जो नित्य छेड़ती स्वर नश्वर
इसकी लय से तुम अविनश्वर अमृत बरसाते जाते हो !!

मैं गाता हूँ नीरव गायन
तुम ला देते उसमें निस्वन
तुम परम अगेय ! गेय बन-बन उसको अपनाते जाते हो !!

तुम प्रतिपल गाते जाते हो !

जीवन-सागर

तेरा विराट जीवन-सागर !

कर रहा निमज्जित लहरों में
जो निखिल सृष्टि को लहर-लहर
डूबे सब इसमें लोक-भुवन
हैं मग्न अचर-चर चिर-नश्वर
ऊपर तल पर जिनके अनगिन
आये हैं बुदबुद उभर-उभर
जो नील गगन में तारक-से
दीपित हैं छवि से छहर-छहर
तेरा विराट जीवन-सागर !

पर, मैं प्राणों से प्राणवान
तिर रहा आह ! ऊपर-ऊपर
मेरे घट का भी हृदय-रन्ध्र
खोलो तरंग से छू-छूकर
तो आज अतल तक डूब सकूँ
तन को जीवन-रस से भर-भर
तेरा विराट जीवन-सागर !

दीप

इस दीपक में स्नेह भरो प्रिय !

मन्द पड़ी बत्ती है कब से
आज इसे प्रज्वलित करो प्रिय !

दीप तुम्हारे मन्दिर का यह
बुझा-बुझा रहता क्यों अहरह !

ज्योति लगा आलोक जगा दो,
अग-जग का तमजाल हरो प्रिय !

इस दीपक में स्नेह भरो प्रिय !

झञ्झा में होकर भी चञ्चल
लौ न बुझे जलती हो अविकल

प्राण, मृत्तिका के दीपक में
आज अमर-वर्त्तिका धरो प्रिय !

इस दीपक में स्नेह भरो प्रिय !

अन्य कृतियाँ

मेरे गीत (१)

[बालोपयोगी गेय गीत]

जिन-जिन बालकों के पास ये गीत पहुँचे हैं, उन्हें इन्होंने मोह लिया है। मोहन न्यूज एजेन्सी, कोटा द्वारा प्रकाशित।

जौहर

[जीवन और प्राणों का उन्नायक एक काव्य]

स्वाभिमान और स्वजाति-गौरव पर बलिदान होजानेवाली पद्मिनी की यह ओजस्विनी चरितगाथा है। यह काव्य विश्व-महिला-साहित्यमाला, विद्यामन्दिर लिमिटेड, नयी दिल्ली में शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है।

आरती

[गीति काव्य]

अमर प्रेम और मानव जीवन की अनेकविध अभिव्यक्तियों को वाणी देनेवाले मर्मस्पर्शी गीत, जिनमें भी कवि एक नयी दिशा और निर्मल दृष्टि लेकर प्रकट हुआ है।

गीताञ्जलि

[विश्व-प्रसिद्ध 'गीतांजलि' का हिन्दी काव्यरूप]

जिसके विषय में बँगला तथा हिन्दी के मनीषियों और कृतविद्यों की सम्मति है कि 'गीताजलि' का ऐसा सच्चा अनुवाद अभीतक किसी भाषा में नही हो सका। नये-नये छन्द और राग-रागिनियों मे परिपूर्ण।

वैजयन्ती

[राष्ट्रीयता से ओतप्रोत लोकप्रिय कवितायें]

ये राष्ट्रीय कवितायें पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी है और कई देशी राज्यों में जनता के गीत बनी हुई हैं। राष्ट्र के राजनैतिक जीवन का पूरा स्पन्दन इनमें मिलता है।